जनवरी -2022

# अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष-86 । अंक-1 । ₹-19 प्रति । ₹-220 वार्षिक

5 एकाकी संकल्प की विलक्षण परिणति

14 सतगुरु सम कोई नहीं, सात द्वीप नौ खंड

32 गायत्री और यज्ञ—सतयुगी समाज के आध्यात्मिक आधार

50 अनमोल संपदा है जल

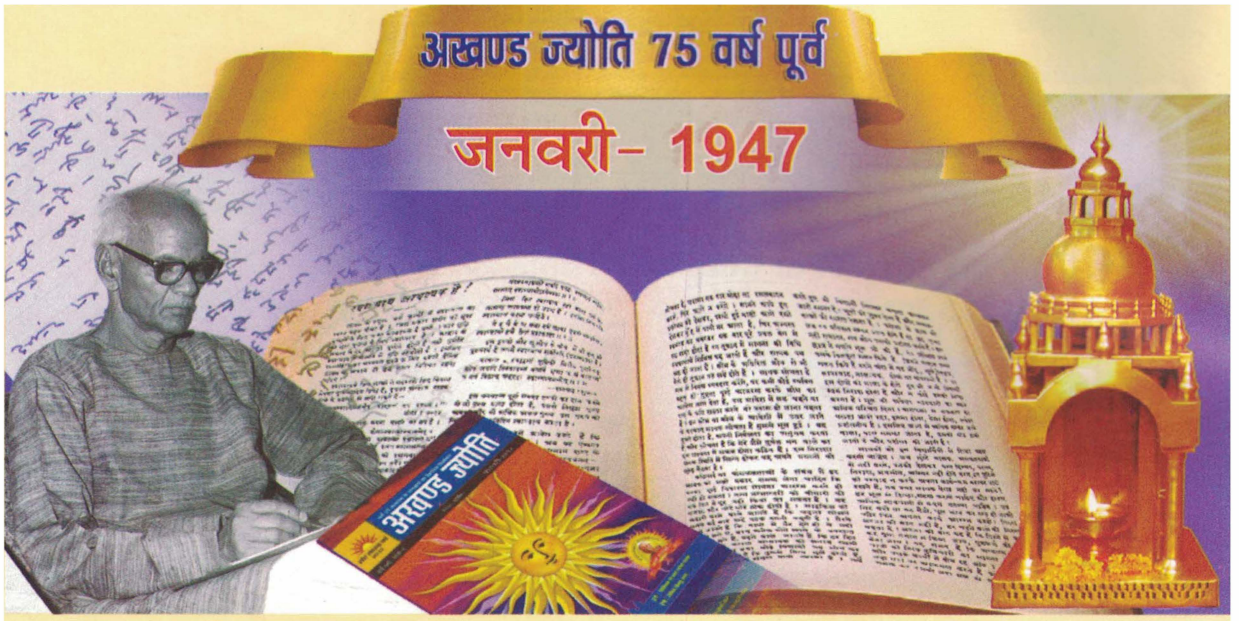


# सबसे पहले अध्यात्मवाद की शिक्षा प्राप्त कीजिए

संसार में अनेक प्रकार के ज्ञान और विज्ञान मौजूद हैं। लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन सबको सीखते हैं और लाभ उठाते हैं। पर इन सब विज्ञानों से ऊँचा एक महाविज्ञान है, जिसके बिना अन्य सब विज्ञान, अधूरे एवं अनुपयोगी हैं। खेद है कि उस महाविज्ञान के महानतम लाभ और महत्त्व की ओर हम ध्यान नहीं देते। अध्यात्मवाद जीवन का वह तत्त्वज्ञान है, जिसके ऊपर आंतरिक और बाहरी उन्नति, समृद्धि एवं सुख-शांति निर्भर है।

साहित्य, कला, शिल्प, रसायन विज्ञान आदि का ज्ञान मनुष्य की पदवी और समृद्धि को बल देता है। पर अध्यात्म ज्ञान के बिना सहयोग, प्रेम, आत्मीयता, संतोष, आनंद एवं उल्लास की उपलब्धि नहीं हो सकती। अनेक धनकुवेर और उच्च पदासीन व्यक्ति अपने जीवन को नरक की ज्वाला जैसी अशांति की अग्नि में दिन -रात जलता हुआ अनुभव करते हैं। इसके विपरीत अनेक साधारण स्थिति के व्यक्ति अपने को स्वर्गीय संतोष की शांति से परितृप्त अनुभव करते हैं।

अध्यात्मवाद वह महाविज्ञान है, जिसकी जानकारी के बिना भूतल के समस्त वैभव निरर्थक हैं और जिसके थोड़ा-सा भी प्राप्त होने पर जीवन आनंद से ओत-प्रोत हो जाता है। संसार में सीखने योग्य, जानने योग्य अनेक वस्तुएँ हैं, पर अखण्ड ज्योति के पाठको! स्मरण रखो सबसे पहले जिसे सीखने और हृदयंगम करने की आवश्यकता है, वह—वैज्ञानिक अध्यात्मवाद ही है।

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
**वेदमूर्ति तपोनिष्ठ**
**पं० श्रीराम शर्मा आचार्य**
एवं
**शक्तिस्वरूपा**
**माता भगवती देवी शर्मा**
संपादक
**डॉ० प्रणव पण्ड्या**
कार्यालय
**अखण्ड ज्योति संस्थान**
**घीयामंडी, मथुरा ( 281003 )**
दूरभाष नं० ( 0565 ) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
**कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।**
**नया ईमेल-**
**akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org**
**प्रातः 10 से सायं 6 तक**

| | |
|---|---|
| वर्ष | : 86 |
| अंक | : 01 |
| जनवरी | : 2022 |
| पौष-माघ | : 2078 |
| प्रकाशन तिथि | : 01.12.2021 |

**वार्षिक चंदा**

| | |
|---|---|
| भारत में | : 220/- |
| विदेश में | : 1600/- |

**आजीवन ( बीसवर्षीय )**
**भारत में** : 5000/-

# मानवीय जीवन

प्रश्न उठता है कि मनुष्य मूलतया क्या है और उसकी जन्मजात प्रवृत्तियाँ क्या हैं ? उत्तर एक ही है कि वह ईश्वर का ज्येष्ठ राजकुमार है और उसकी विश्ववाटिका को समुन्नत-विकसित करने के लिए कुशल माली की भूमिका में उसे धरती पर भेजा गया है। इसी आधार पर उसे बहुमूल्य शरीर, उत्कृष्ट मन, श्रेष्ठतम भावनाओं के उपहार प्रदान किए गए हैं।

प्रचलित मान्यता के अनुसार इनसान के अस्तित्व की तुलना पशु प्रवृत्तियों से की जाती रही है। यदि वैसा मानें तो वैसे ही उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जीवन निमग्न कर देने में फिर दोष कैसा ? शास्त्रों की दृष्टि से यह मत सत्य नहीं है। भारतीय चिंतन मनुष्य जीवन को देवत्व की प्राप्ति का साधन मानता है। कहते यही हैं कि मनुष्य पूर्ण से उत्पन्न हुआ, पूर्णता से युक्त है और बिना पूर्ण की प्राप्ति के अपूर्ण ही रहेगा।

मनुष्य की लौकिक जरूरतें ज्यादा नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति सुनियोजित श्रम एवं बौद्धिक प्रखरता के आधार पर उन्हें सरलतापूर्वक अर्जित कर सकता है। उतने से संतोष किया जा सके तो आत्मपरिष्कार और लोक-मंगल की दिशा में श्रेष्ठतम कर गुजरने का अवसर किसी को भी मिल सकता है। यदि वैसा कुछ किया जा सके तो मानव जीवन की प्राप्ति का यह सौभाग्य संतोषप्रद परिणामों को प्रदान करके ही जाता है। परिस्थितियाँ कितनी भी कठिन हों, मन:स्थिति के बदलते ही वे भी पलक झपकते बदल जाती हैं। मनुष्य यदि आत्मसुधार कर सके, गुण-कर्म-स्वभाव को अपनी गरिमा के अनुरूप ढाल सके तो देखते-देखते धरती स्वर्ग में बदल जाएगी। यही वर्तमान समय की आवश्यकता भी है और उत्तरदायित्व भी। ❐

# विषय सूची


- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- मानवीय जीवन — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  एकाकी संकल्प की विलक्षण परिणति — 5
- तप और योग से युक्त अध्यात्म पथ का सुनिश्चित विज्ञान — 7
- बिनु सतसंग बिबेक न होई — 9
- **पर्व विशेष**
  योद्धा संन्यासी का युग संदेश, जो आज और भी अधिक प्रासंगिक है — 12
- सतगुरु सम कोई नहीं, सात द्वीप नौ खंड — 14
- स्वयं का अर्पण ही है, संपूर्ण समर्पण — 16
- राष्ट्रहित — 18
- अनुभूतिजन्य है सत्य — 20
- परमपूज्य गुरुदेव का अद्वैतवादी चिंतन — 22
- अकारण विरोध एवं विद्वेष से निपटने का राजमार्ग — 25
- रोचक बरफीला संसार — 27
- जैव-विविधता का महत्त्व — 29
- गायत्री और यज्ञ—सतयुगी समाज के आध्यात्मिक आधार — 32
- नववर्ष की मंगलकामना — 35
- पाखंड खंडन करने को जब चले गुरुनानक देव — 39
- **चेतना की शिखर यात्रा—232**
  साधना स्वर्ण जयंती — 41
- प्लास्टिक कचरे का उचित नियोजन — 44
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—153**
  यज्ञधूम्र पर शोध अध्ययन — 47
- अनमोल संपदा है जल — 50
- वृक्षारोपण हमारा पुनीत कर्त्तव्य — 52
- **युगगीता—260**
  बार-बार आसुरी योनियों में गिरते हैं नराधम — 54
- व्यक्तित्व से जुड़े सफलता के तार — 56
- विज्ञान, काव्य और धर्म — 58
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  अध्यात्म का सच्चा स्वरूप — 60
- **विश्वविद्यालय परिसर से—199**
  राष्ट्रभक्ति के भावों से भर उठा विश्वविद्यालय — 66
- **अपनों से अपनी बात**
  प्रज्ञा परिजनों की पात्रता की परीक्षा का समय — 68
- नया नववर्ष नवयुग का (कविता) — 70
- आवरण—3 — 71
- आवरण—4 — 72


## आवरण पृष्ठ परिचय

### उदीयमान स्वर्णिम सूर्य

### जनवरी-फरवरी, 2022 के पर्व-त्योहार

| | | |
|---|---|---|
| शनिवार | 08 जनवरी | सूर्य पष्ठी |
| रविवार | 09 जनवरी | गुरु गोविंद सिंह जयंती |
| बुधवार | 12 जनवरी | स्वामी विवेकानंद जयंती |
| गुरुवार | 13 जनवरी | पुत्रदा एकादशी |
| शुक्रवार | 14 जनवरी | मकर संक्रांति |
| शुक्रवार | 21 जनवरी | संकष्ट चतुर्थी |
| रविवार | 23 जनवरी | नेताजी सुभाष चंद्र बोस जयंती |
| बुधवार | 26 जनवरी | गणतंत्र दिवस |
| शुक्रवार | 28 जनवरी | षट्तिला एकादशी 'स्मा.' |
| शनिवार | 05 फरवरी | वसंत पंचमी/परमपूज्य गुरुदेव बोध दिवस |
| रविवार | 06 फरवरी | सूर्य पष्ठी |
| शनिवार | 12 फरवरी | जया एकादशी |
| बुधवार | 16 फरवरी | संत रविदास जयंती/पूर्णिमा |
| रविवार | 27 फरवरी | विजया एकादशी |

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** ***—संपादक***

विशिष्ट सामयिक चिंतन

# एकाकी संकल्प की विलक्षण परिणति

संकल्प बल हो तो बड़े-से-बड़े पुरुषार्थ को पूर्ण कर पाना संभव हो पाता है। जिस पत्रिका को आज हम पढ़ रहे हैं—इसकी शुरुआत के पीछे भी एक ऐसे ही संकल्प बल की गाथा है, जिसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्मरण कर लेना आवश्यक हो जाता है। सन् 1940 में जब अखण्ड ज्योति का प्रथम अंक परमपूज्य गुरुदेव ने पुन: प्रकाशित किया तो उस पर उन्होंने यह स्पष्ट रूप से लिखा कि 'अखण्ड ज्योति पत्रिका का अगला अंक हर निश्चित तिथि पर ही छपाकर तैयार रख लेंगे और पाठकों की सेवा में भेजेंगे। बिना नंबर आए पत्रिका भेजने में तिगुना पोस्टेज लगेगा, इसलिए अगले अंक के लिए पूरी फरवरी की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि फिर भी नंबर न आया तो 28 फरवरी को तिगुना पोस्टेज लगाकर भी अखण्ड ज्योति अवश्य भेजेंगे।'

यह कल्पना करनी भर भी मुश्किल है कि परमपूज्य गुरुदेव जिन्होंने परमवंदनीया माताजी के गहने व अपना सब कुछ बेचकर जिस किसी प्रकार अखण्ड ज्योति के प्रकाशन की व्यवस्था बनाई, वे सारे झंझावातों के मध्य भी पाठकों को दिए वचन से समझौता नहीं करना चाहते थे।

ऐसे अमानवीय संकल्प के धनी ही प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य एक ऐसे समय में जब भारत व विश्व की सारी गतिविधियाँ, गंभीर उथल-पुथल की थीं—ऐसे समय में अखण्ड ज्योति पत्रिका को, जो बिना किसी विज्ञापन के निकलती रही। घर-घर तक पहुँचा ही देंगे का वचन दे सकते थे। उन्होंने एकाकी संकल्प के बूते पत्राचार, स्वाध्याय, लेखन-प्रकाशन-मुद्रण की संपूर्ण व्यवस्था, कागज इत्यादि का प्रबंध, रजिस्ट्रेशन नंबर इत्यादि की व्यवस्था उस समय में बनवा दी, जब ब्रिटिश हुकूमत सभी को गंभीर यातनाएँ दे रही थी और जरूरत की सामग्री भी आसानी से नहीं मिल पाती थी, उस पर भी उनके संकल्प का आलम यह था कि बिना किसी से संसाधनों की माँग किए, बिना किसी प्रकार की वित्तीय सहायता लिए वे पत्रिका को प्रकाशित करेंगे।

अखण्ड ज्योति को उन्होंने प्रारंभ के दिनों से ही आद्योपांत लिखा—इसके प्रथम से लेकर अंतिम पृष्ठ तक की सामग्री उन्हीं के द्वारा लिखी हुई होती थी, तब भी वे लेखकों के काल्पनिक नाम इसमें जोड़ दिया करते थे। जैसे-जैसे अखण्ड ज्योति पत्रिका लोगों के हृदयस्थल में विराजमान होती गई, वैसे-वैसे उन्होंने उसमें नाम देने का क्रम बंद कर दिया।

वैसे तो अखण्ड ज्योति की शुरुआत वसंत पंचमी 1940 से हुई, पर उसके नाम का संकल्प परमपूज्य गुरुदेव ने कुछ वर्षों पहले ही ले लिया था। इसीलिए उन्होंने पत्रिका की स्थापना का इतिहास व उसका उद्देश्य बताते हुए 2000 लोगों को प्रथम प्रति भेजी थी—साथ ही उसमें एक भावभरा संदेश भी था कि यदि लोगों को यह प्रति पसंद आए तो वे अन्य पाँच व्यक्तियों तक भी इसे पहुँचाएँ। यदि ग्राहक बनना चाहें तो उन्हें जब सुविधा हो तब चंदा भेज दें। प्रत्येक पत्रिका का मूल्य था नौ पैसा, वार्षिक 1.50 रुपया।

परमपूज्य गुरुदेव ने प्रारंभ से ही अखण्ड ज्योति पत्रिका का उद्देश्य पाठकों की साधनात्मक वृत्ति को जाग्रत करना रखा था। सन् 1940 के अगस्त के अंक में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा—"हमारा विश्वास है कि अखण्ड ज्योति के पाठक कुछ-न-कुछ भजन, पूजन, साधना, अनुष्ठान करते होंगे। वे जैसा भी कुछ अपने विश्वास के कारण करते हों करें, परंतु एक साधना को करने के लिए हम उन्हें अनुरोधपूर्वक प्रेरित करेंगे कि वे दिन-रात में से कोई भी पंद्रह मिनट का समय निकालें और एकांत में शांतिपूर्वक सोचें कि वे क्या हैं? वे सोचें कि क्या वे उस कर्त्तव्य को पूरा कर रहे हैं, जो मनुष्य होने के नाते उन्हें सौंपा गया था। मन से कहिए कि वह निर्भीक सत्य वक्ता की तरह आपके अवगुण आपको साफ-साफ बताए।"

प्रारंभ के तेरह अंक परमपूज्य गुरुदेव ने आगरा से प्रकाशित किए, पर बाद में भगवान श्रीकृष्ण की जन्मभूमि

मथुरा को उन्होंने अपना निवासस्थान बनाया। वहाँ पर उन्होंने प्रकाशन की सारी व्यवस्थाएँ नए सिरे से जुटाईं। सारे संपर्क सूत्र नए सिरे से स्थापित करने पड़े, पर इतनी सारी प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद पत्रिका की छपाई व उसके भेजने के क्रम में उन्होंने एक दिन की भी देरी नहीं होने दी।

मथुरा से प्रकाशित होने के कारण अखण्ड ज्योति के प्रारंभिक अंकों में मुखपृष्ठ पर भगवान कृष्ण युद्धभूमि में खड़े दिखाए गए। उसके पीछे का भाव शायद यह ही था कि अखण्ड ज्योति परिवार के सदस्य यह जान लें कि युद्धकालीन परिस्थितियों में भी वे महाकाल के संरक्षण में हैं। किन्हीं भी कठिनाइयों के बीच से गुजरते हुए परमपूज्य गुरुदेव के अखण्ड ज्योति पाठकों का परिवार 2 हजार सदस्यों से बढ़ते-बढ़ते करोड़ों तक जा पहुँचा।

उनकी संकल्पशक्ति का ही यह परिणाम था कि कुछ सौ हाथों से बढ़ते-बढ़ते अखण्ड ज्योति पत्रिका अनेकों के घर जा पहुँची। इस बात का उन्हें पूर्व से ही आभास था कि यह यात्रा सरल नहीं होगी और संभवतया इसीलिए उन्होंने शुरू में ही इस बात को अखण्ड ज्योति पत्रिका में लिख दिया कि

**सुधा बीज बोने से पहिले,**
**कालकूट पीना होगा।**
**पहिन मौत का मुकुट,**
**विश्वहित मानव को जीना होगा॥**

विश्व का हित सुरक्षित रखने के लिए ही उन्होंने अपने जीवन को एक दुर्द्धर्ष तपस्वी की तरह जिया। इसीलिए उन्होंने उन्हीं दिनों उनके द्वारा लिखी गई एक अन्य कविता में लिखा—"मिट्टी की है देह-दीप जलना मेरा इतिहास है।" अखण्ड ज्योति पत्रिका को परमपूज्य गुरुदेव ने एक दैवी चेतना के आवाहन के रूप में प्रारंभ किया था, जिसका उद्देश्य एक ही था कि मनुष्य के भीतर उपस्थित देवत्व की संभावना को जाग्रत किया जा सके और इस धरती को ही स्वर्गलोक में बदला जा सके। इसीलिए अखण्ड ज्योति की शुरुआत की पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार से थीं—

**संदेश नहीं मैं स्वर्गलोक का लाई।**
**इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥**

जिन दिनों में संपूर्ण विश्व—युद्धों की विभीषिका को झेल रहा था, उन्हीं दिनों में परमपूज्य गुरुदेव ने 100 वर्ष बाद अर्थात सन् 2042 तक नवयुग की परिस्थितियों के अवतरण के संकेत देना शुरू कर दिया था और यह लिखना आरंभ कर दिया था कि ये विभीषिका की परिस्थितियाँ शीघ्र सिमट जाएँगी। सन् 1947 के बाद परमपूज्य गुरुदेव ने पाठकों को सच्चे अध्यात्म के विषय में बताना आरंभ कर दिया, ताकि गायत्री का तत्त्वज्ञान जन-जन तक पहुँचे और वे भटकावे में अपने जीवन को निरर्थक न गँवाएँ।

कालांतर में परमपूज्य गुरुदेव ने अखण्ड ज्योति पत्रिका को वैज्ञानिक अध्यात्मवाद जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के प्रतिपादन का संवाहक भी बनाया और गंभीर साधकों के लिए 'गायत्री की उच्चस्तरीय साधनाएँ' नाम से एक स्तंभ का प्रकाशन भी आरंभ किया। सही पूछा जाए तो अखण्ड ज्योति पत्रिका न केवल परमपूज्य गुरुदेव के एकाकी संघर्ष का सुफल है, बल्कि एक ऐसे दैवी प्रवाह का प्रतीक भी है; जिसके माध्यम से युग-परिवर्तन की पृष्ठभूमि यहाँ तैयार की जा रही थी। वर्तमान परिस्थितियों में जब कुछ वैसी ही समस्याएँ हमारे सम्मुख हैं; जैसी कभी परमपूज्य गुरुदेव के सम्मुख अखण्ड ज्योति प्रारंभ करते समय थीं तो यह सामयिक हो जाता है कि शांतिकुंज को प्राण देने वाली इस पत्रिका को जन-जन तक पहुँचाने के माध्यम हम लोग बन सकें। ❑

**इक्कीसवीं सदी की संपूर्ण व्यवस्था एकता और समता के सिद्धांतों पर आधारित होगी। हर क्षेत्र में, हर प्रसंग में, उन्हीं का बोलबाला दृष्टिगोचर होगा। इस भवितव्यता के अनुरूप हम अभी से धीमी-धीमी तैयारियाँ शुरू कर लें तो यह अपने हित में होगा। ब्राह्ममुहूर्त में जागकर नित्यकर्म से निबट लेने वाले व्यक्ति सूर्योदय होते ही अपने क्रियाकलापों में जुट जाते हैं; जबकि दिन चढ़े तक सोते रहने वाले कितने ही कामों में पिछड़ जाते हैं।** ***—परमपूज्य गुरुदेव***

# तप और योग से युक्त अध्यात्म पथ का सुनिश्चित विज्ञान

अध्यात्म एक ऐसा विज्ञान है, जिसमें सुनिश्चित साधनात्मक विधान को अपनाते हुए दो प्रयोजन सिद्ध किए जाते हैं। एक है—अंतराल की प्रसुप्त विभूतियों का जागरण और दूसरा है—अनंत ब्रह्मांड में व्याप्त ब्राह्मी चेतना का अनुग्रह अवतरण। इसको संभव करने के लिए साधक को दो कदम बढ़ाने होते हैं; जिनके नाम हैं—तप और योग।

तप में जहाँ चित्त का परिशोधन होता है तो वहीं योग में चेतना का परिष्कार। परिशोधन अर्थात संचित कषाय-कल्मषों का, कुसंस्कारों का, दुष्कर्मों के प्रारब्ध संचय का निराकरण। वहीं परिष्कार का अर्थ है—श्रेष्ठता का जागरण, अभिवर्द्धन। इस तरह तपश्चर्या एवं योग-साधना के दो चरणों को अपनाते हुए अध्यात्म का प्रयोजन पूरा किया जाता है।

तप को शरीर तक सीमित समझना नादानी होगी। इसका दायरा शरीर से आगे बढ़कर प्राण एवं मन तक विस्तृत है अर्थात पूरा अस्तित्व इसके कार्यक्षेत्र में आता है। तप की यह प्रक्रिया संयम, परिशोधन एवं जागरण के तीन चरणों में पूरी होती है। संयम में दैनिक जीवन की ऊर्जा के क्षरण को रोकते हुए उसे संचित किया जाता है और इसका नियोजन महत्त्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ कार्यों में किया जाता है। परमपूज्य गुरुदेव ने इसके चार स्वरूपों की चर्चा की है, यथा—इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम।

इंद्रिय संयम में पाँच ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों को परिष्कृत एवं सुनियोजित किया जाता है, जिससे तन-मन की सामर्थ्य भंडार के अपव्यय को रोककर प्रचंड ऊर्जा का संचय किया जा सके और इसका नियोजन आत्मबल संवर्द्धन के उच्चस्तरीय प्रयोजन के निमित्त किया जा सके। इंद्रिय संयम की परिणति अर्थ संयम के रूप में होती है। धन एक तरह की शक्ति है, जो श्रम, समय एवं मनोयोग की सूक्ष्म विभूतियों का स्थूल रूप है। इसके संयम के साथ इन सूक्ष्म विभूतियों का उच्चस्तरीय उपयोग संभव होता है।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में धन को जीवनोपयोगी-समाजोपयोगी शक्ति माना जाना चाहिए और एक-एक पैसे का मात्र सत्प्रयोजनों में ही उपयोग होना चाहिए। समय संयम—ईश्वर द्वारा मनुष्य को सौंपी गई समयरूपी विभूति के सदुपयोग का विधान है, जिसके आधार पर विभिन्न प्रकार की भौतिक एवं आत्मिक विभूतियाँ सफलताएँ-संपदाएँ अर्जित कर सकना संभव होता है। इसके सही नियोजन के अभाव में समूची जीवन-ऊर्जा इधर-उधर बिखरकर नष्ट हो जाती है।

विचार संयम—मन की अपरिमित ऊर्जा के संयम एवं नियोजन का विज्ञान है, जिसके अभाव में इसकी अद्भुत क्षमता बिखरकर यों ही नष्ट होती रहती है। अनगढ़ और अनैतिक विचार न केवल मन को बहुत खोखला बनाते हैं, बल्कि ऐसी मनोग्रंथियों को जन्म देते हैं, जिनसे आत्मविकास का मार्ग सदा-सदा के लिए अवरुद्ध हो जाए। गुरुदेव के शब्दों में विचारशक्ति को भी उच्चस्तरीय संपदा माना जाए और चिंतन की एक-एक लहर को रचनात्मक दिशाधारा में प्रवाहित करने का जी-तोड़ परिश्रम किया जाए।

संयम के बाद तप के अंतर्गत परिशोधन का दूसरा महत्त्वपूर्ण चरण आता है। जीवन-ऊर्जा की आवश्यक मात्रा को संचित किए बिना इसे कर पाना संभव नहीं होता। संगृहीत प्राण-ऊर्जा के द्वारा अचेतन मन की ग्रंथियों को खोलना तथा जन्म-जन्मांतर के कर्मबीजों को दग्ध करना इस प्रक्रिया में सम्मिलित हैं। मानवीय व्यक्तित्व को विघटित कर रही शारीरिक और मानसिक परेशानियों का कारण अचेतन मन की ये ग्रंथियाँ ही होती हैं, जिनमें अवरुद्ध ऊर्जा विकास के स्थान पर विनाश के दृश्य उपस्थित कर रही होती है। तमाम तरह के शारीरिक एवं मानसिक रोग इनके कारण व्यक्ति के जीवन को आक्रांत किए रहते हैं।

चित्त की इन ग्रंथियों के परिशोधन के लिए अनेक तरह की तपश्चर्याओं का विधान है। परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री महाविज्ञान में बारह तरह के तपों का वर्णन किया है, जिनको अपनाने पर अंत:करण में जड़ जमाए कुसंस्कारों का परिमार्जन होता है तथा इसमें छिपी हुई सुप्त शक्तियाँ जाग्रत होती हैं व दिव्य सतोगुण का विकास होता है।

# तप और योग से युक्त अध्यात्म-पथ का सुनिश्चित विज्ञान

अध्यात्म एक ऐसा विज्ञान है, जिसमें सुनिश्चित साधनात्मक विधान को अपनाते हुए दो प्रयोजन सिद्ध किए जाते हैं। एक है—अंतराल की प्रसुप्त विभूतियों का जागरण और दूसरा है—अनंत ब्रह्मांड में व्याप्त ब्राह्मी चेतना का अनुग्रह अवतरण। इसको संभव करने के लिए साधक को दो कदम बढ़ाने होते हैं; जिनके नाम हैं—तप और योग।

तप में जहाँ चित्त का परिशोधन होता है तो वहीं योग में चेतना का परिष्कार। परिशोधन अर्थात संचित कषाय-कल्मषों का, कुसंस्कारों का, दुष्कर्मों के प्रारब्ध संचय का निराकरण। वहीं परिष्कार का अर्थ है—श्रेष्ठता का जागरण, अभिवर्द्धन। इस तरह तपश्चर्या एवं योग-साधना के दो चरणों को अपनाते हुए अध्यात्म का प्रयोजन पूरा किया जाता है।

तप को शरीर तक सीमित समझना नादानी होगी। इसका दायरा शरीर से आगे बढ़कर प्राण एवं मन तक विस्तृत है अर्थात पूरा अस्तित्व इसके कार्यक्षेत्र में आता है। तप की यह प्रक्रिया संयम, परिशोधन एवं जागरण के तीन चरणों में पूरी होती है। संयम में दैनिक जीवन की ऊर्जा के क्षरण को रोकते हुए उसे संचित किया जाता है और इसका नियोजन महत्त्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ कार्यों में किया जाता है। परमपूज्य गुरुदेव ने इसके चार स्वरूपों की चर्चा की है, यथा—इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम।

इंद्रिय संयम में पाँच ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों को परिष्कृत एवं सुनियोजित किया जाता है, जिससे तन-मन की सामर्थ्य भंडार के अपव्यय को रोककर प्रचंड ऊर्जा का संचय किया जा सके और इसका नियोजन आत्मबल संवर्द्धन के उच्चस्तरीय प्रयोजन के निमित्त किया जा सके। इंद्रिय संयम की परिणति अर्थ संयम के रूप में होती है। धन एक तरह की शक्ति है, जो श्रम, समय एवं मनोयोग की सूक्ष्म विभूतियों का स्थूल रूप है। इसके संयम के साथ इन सूक्ष्म विभूतियों का उच्चस्तरीय उपयोग संभव होता है।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में धन को जीवनोपयोगी-समाजोपयोगी शक्ति माना जाना चाहिए और एक-एक पैसे का मात्र सत्प्रयोजनों में ही उपयोग होना चाहिए। समय संयम—ईश्वर द्वारा मनुष्य को सौंपी गई समयरूपी विभूति के सदुपयोग का विधान है, जिसके आधार पर विभिन्न प्रकार की भौतिक एवं आत्मिक विभूतियाँ सफलताएँ-संपदाएँ अर्जित कर सकना संभव होता है। इसके सही नियोजन के अभाव में समूची जीवन-ऊर्जा इधर-उधर बिखरकर नष्ट हो जाती है।

विचार संयम—मन की अपरिमित ऊर्जा के संयम एवं नियोजन का विज्ञान है, जिसके अभाव में इसकी अद्भुत क्षमता बिखरकर यों ही नष्ट होती रहती है। अनगढ़ और अनैतिक विचार न केवल मन को बहुत खोखला बनाते हैं, बल्कि ऐसी मनोग्रंथियों को जन्म देते हैं, जिनसे आत्मविकास का मार्ग सदा-सदा के लिए अवरुद्ध हो जाए। गुरुदेव के शब्दों में विचारशक्ति को भी उच्चस्तरीय संपदा माना जाए और चिंतन की एक-एक लहर को रचनात्मक दिशाधारा में प्रवाहित करने का जी-तोड़ परिश्रम किया जाए।

संयम के बाद तप के अंतर्गत परिशोधन का दूसरा महत्त्वपूर्ण चरण आता है। जीवन-ऊर्जा की आवश्यक मात्रा को संचित किए बिना इसे कर पाना संभव नहीं होता। संगृहीत प्राण-ऊर्जा के द्वारा अचेतन मन की ग्रंथियों को खोलना तथा जन्म-जन्मांतर के कर्मबीजों को दग्ध करना इस प्रक्रिया में सम्मिलित हैं। मानवीय व्यक्तित्व को विघटित कर रही शारीरिक और मानसिक परेशानियों का कारण अचेतन मन की ये ग्रंथियाँ ही होती हैं, जिनमें अवरुद्ध ऊर्जा विकास के स्थान पर विनाश के दृश्य उपस्थित कर रही होती है। तमाम तरह के शारीरिक एवं मानसिक रोग इनके कारण व्यक्ति के जीवन को आक्रांत किए रहते हैं।

चित्त की इन ग्रंथियों के परिशोधन के लिए अनेक तरह की तपश्चर्याओं का विधान है। परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री महाविज्ञान में बारह तरह के तपों का वर्णन किया है, जिनको अपनाने पर अंत:करण में जड़ जमाए कुसंस्कारों का परिमार्जन होता है तथा इसमें छिपी हुई सुप्त शक्तियाँ जाग्रत होती हैं व दिव्य सतोगुण का विकास होता है।

ये तप कुछ इस प्रकार से हैं—(1) अस्वाद तप, (2) तितीक्षा तप, (3) कर्षण तप, (4) उपवास, (5) गव्य कल्प तप, (6) प्रदातव्य तप, (7) निष्कासन तप, (8) साधना तप, (9) ब्रह्मचर्य तप, (10) चांद्रायण तप, (11) मौन तप और (12) अर्जन तप।

इनको अपनाने पर तन-मन के मल-विकारों की सफाई होती है; जिससे नस-नाड़ियों में रक्त का नया संचार होने लगता है एवं शारीरिक तंत्र नई स्फूर्ति से काम करने लगता है। साथ ही सूक्ष्मनाड़ियों में नव-प्राण का संचार होने लगता है और चित्त में जड़ जमाए कषाय-कल्मषों का परिमार्जन होता है।

तप के अंतर्गत परिशोधन के बाद फिर जागरण की प्रक्रिया आती है। अचेतन ग्रंथियों में अवरुद्ध जीवन- ऊर्जा के मुक्त होने पर अंतर्निहित क्षमताओं के जागरण का क्रम शुरू होता है। इसके प्रथम चरण में प्रतिभा, साहस, आत्मबल जैसी विभूतियाँ प्रस्फुटित होने लगती हैं। साथ ही मानवीय अस्तित्व के उन शक्ति संस्थानों के जाग्रत होने का क्रम प्रारंभ हो जाता है, जिनके द्वारा मनुष्य अनंत ब्राह्मीचेतना के प्रवाह को स्वयं में धारण करने में सक्षम होने लगता है। मानवीय चेतना में निहित ऋद्धि-सिद्धि के रूप में वर्णित अतींद्रिय शक्तियाँ एवं अलौकिक क्षमताएँ प्रकट होने लगती हैं।

यहाँ तप के साथ योग का समन्वय जीवन-साधना को पूर्णता देता है। तप एक तरह के अर्जन की प्रक्रिया है तो योग समर्पण और विसर्जन का विधान है। तप में व्यक्ति की प्रसुप्त शक्तियों के जागरण एवं ऋद्धि-सिद्धियों के अर्जन के साथ अहंकार फूल सकता है, अध्यात्म पथ में विचलन आ सकता है, लेकिन योग इस दुर्घटना से बचाता है; क्योंकि इसमें अहंकार का समर्पण एवं विसर्जन होता है। यह अहं तक सीमित आत्मसत्ता के संकीर्ण दायरे को विराट अस्तित्व से जोड़ने व आत्मविस्तार की प्रक्रिया है।

भक्तियोग में जहाँ साधक अपने इष्ट-आराध्य एवं भगवान से जुड़कर इस स्थिति को पाता है, वहीं ज्ञानी आत्मा और ब्रह्म की एकता को स्थापित करते हुए अद्वैत की अवस्था को प्राप्त होता है। वहीं कर्मयोगी विराट ब्रह्म को सृष्टि में निहारते हुए निष्काम कर्म के साथ जीवन की व्यापकता को साधता है। ध्यानयोगी अष्टांगयोग की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए समाधि की अवस्था को प्राप्त होता है तथा जीवन के सकल समाधान को पाता है।

इस तरह तप जहाँ जीवन-साधना का प्राथमिक आधार रहता है तो वहीं योग इसको निष्कर्ष तक ले जाने वाला अंतिम सोपान है। दोनों मिलकर जीवन-साधना को पूर्णता देते हैं और व्यक्ति को आत्मसिद्धि एवं मुक्ति के चरम उत्कर्ष तक ले जाते हैं। इस तरह तप और योग से युक्त पथ आध्यात्मिक जीवन का सुनिश्चित विज्ञान है, जो सकल सृष्टि के लिए वरदानस्वरूप होता है। ❑

**लक्ष्मीकांत नाम का एक सेठ था। किसी संत ने उससे कहा था—"सेठ! सबकी सहायता किया करो, तब प्रभु तुम्हारी सहायता करेंगे।" तभी से सेठ सबकी यथासंभव सहायता करने लगा था। एक बार सेठ को एक गाँव में जाना पड़ा। वहाँ के लोगों की सेठ बहुत सहायता करते थे। सेठ को आशा थी कि गाँव के लोग मेरी सहायता के बदले जरूर मेरी आवभगत करेंगे, पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। सेठ बहुत परेशान हुआ। दैवयोग से वही संत सेठ के पास पुनः आए। सेठ को दुःखी देखकर कारण पूछा तो सेठ ने पूरी बात बताई। तब संत बोले—"सेठ जी इनसान को निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए और फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। यही इनसान का सच्चा कर्त्तव्य है।" संत की बात सुनकर सेठ जी का मन निर्मल हो गया। वे अब निष्काम भाव से परोपकार करने लगे।**

# बिनु सतसंग बिबेक न होई

निर्विकल्प समाधि की अवस्था को प्राप्त बाबा ब्रह्मदास आज महीनों बाद हिमालय की गोद में स्थित अपनी कुटिया से बाहर निकले थे। आज मकर संक्रांति थी, अस्तु वे भगवान श्रीकृष्ण का विशेष पूजन-वंदन कर प्रभुप्रेरणा से जनमानस को अपने भगवद्ज्ञान का अमृत बाँटने की शुभ भावना के साथ पैदल चले जा रहे थे। चलते-चलते वे चंदनपुर गाँव के समीप आ पहुँचे। गाँववालों ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया और यह विनती भी कि महात्मन्! आज संक्रांति के पावन अवसर पर हमारे गाँव चलकर आप उसे अपने चरणों की रज से पवित्र करने की कृपा करें।

लोगों के अनुनय-विनय पर बाबा उनके साथ चंदनपुर गाँव चल दिए। गाँव की गलियों से गुजरते हुए बाबा को देखकर गाँव के लोग बड़े हर्षित और आनंदित हो रहे थे। मकर संक्रांति के पावन अवसर पर किसी संत के दर्शन पाकर गाँववासी अपने भाग्य की सराहना कर रहे थे। बाबा गाँव में बने देवस्थल के पास एक चबूतरे पर जाकर बैठ गए। गाँववालों ने बाबा की खूब आवभगत की। उन्हें बैठने को आसन दिया, उन्हें मीठा जल व मिष्टान्न भी दिए। वहाँ की खाली जमीन पर गाँव के लोगों के बैठने की व्यवस्था की गई।

देखते-ही-देखते वहाँ बाबा के दर्शन एवं सत्संग को हजारों लोग जमा हो गए। बाबा का सत्संग प्रारंभ हुआ। बाबा ने भगवान के विभिन्न अवतारों का वर्णन किया। अवतारों की मधुर लीलाओं का उन्होंने बड़ा ही अद्भुत वर्णन किया। तत्पश्चात वहाँ प्रश्नोत्तरी का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। हजारों की भीड़ में बैठे कुछ जिज्ञासु लोग बाबा के समक्ष अपनी जिज्ञासाएँ रखते और बाबा उनकी जिज्ञासाओं का, प्रश्नों का शास्त्रीय समाधान देते जाते।

इसी क्रम में एक जिज्ञासु ने पूछा—"महात्मन्! मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है, फिर मनुष्य की आत्मा अजर-अमर कैसे है?" महात्मा जी ने कहा—"वत्स! मनुष्य का शरीर पंचतत्त्वों से मिलकर बना है। शरीर से प्राण निकल जाने पर, इस शरीर की मृत्यु तो होती है, पर आत्मा की नहीं; क्योंकि आत्मा जीवन और मृत्यु से परे की चीज है। आत्मा भौतिक नहीं, अभौतिक है। आत्मा परमात्मा का अंश है। यह न तो जन्मती है न ही मरती है। यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारी जाती। इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकती।"

वे आगे बोले—"मृत्यु के पश्चात पंचतत्त्वों से बना शरीर तो पंचतत्त्वों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) में विलीन हो जाता है, पर आत्मा पंचतत्त्वों से नहीं बनी है। यह तो परमात्मा का अंश है, परमात्मा की चिनगारी है, जो आत्मा के रूप में मनुष्य के शरीर में निवास करती है। इसलिए शरीर की मृत्यु के पश्चात भी आत्मा की मृत्यु नहीं होती।

"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त करती है। अस्तु मृत्यु तो शरीर की होती है। उस शरीर में वास कर रही जीवात्मा की नहीं। जीवात्मा पुनः अपने कर्म के अनुसार नए शरीर को प्राप्त कर लेती है, जैसे—कोई पुराने, फटे वस्त्र को त्यागकर कोई नया वस्त्र धारण कर लेता है।"

उक्त प्रश्न के उत्तर के पश्चात सत्संग में बैठे किसी दूसरे जिज्ञासु ने पूछा—"महात्मन्! यदि आत्मा ईश्वर का अंश है तो शरीर में रहते हुए हमें इसकी अनुभूति क्यों नहीं होती?" इस पर महात्मा जी ने कहा—"जैसे पूर्णिमा का पूर्ण चंद्रमा अपने संपूर्ण स्वरूप में, अपनी सभी कलाओं व संपूर्ण सौंदर्य के साथ जब समुद्र में प्रतिबिंबित होता है तो समुद्र में उठ रही ऊँची-ऊँची लहरों के कारण हमें उसका पूर्ण स्वरूप, स्थिर स्वरूप नहीं दिखाई देता, पर जैसे ही समुद्र की लहरें पूरी तरह शांत हो जाती हैं तो उसी पल हमें चंद्रमा का पूर्ण सौंदर्य, पूर्ण स्वरूप उस समुद्र की सतह पर प्रतिबिंबित दिखाई पड़ जाता है। उस सौंदर्य को देखकर हमारा चित्त आनंदित होता है, हमारी आत्मा आनंदित होती है।"

''उसी प्रकार हमारी जीवात्मा परमात्मा का अंश है, पर अज्ञानतावश स्वयं को शरीर, मन, बुद्धि और प्राण मान लेने के कारण हमें अपने ही शरीर में स्थित परमात्मा के दिव्य अंश आत्मा की अनुभूति नहीं हो पाती। हमारे चित्त में उठ रही कामनाओं, वासनाओं की ऊँची-ऊँची लहरों के कारण हमें हमारे ही अंदर वास कर रही परमात्मा की सजीव चिनगारी आत्मा की अनुभूति नहीं हो पाती, पर भगवत्-उपासना, ध्यान, जप, स्वाध्याय आदि के निरंतर अभ्यास से जब चित्त में उठ रही, मन में उठ रही संस्कारों, विकारों व वासनाओं की लहरें शांत हो जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं और अंत:करण पवित्र हो जाता है तब हमें परमात्मा के दिव्य अंश आत्मा की अनुभूति पल-पल होने लगती है।''

वे अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए बोले—''उस समय हमें अपने अंदर ही नहीं, बल्कि सर्वत्र परमात्मा की व्यापकता की अनुभूति होने लगती है। तब हमारी जीवन-दृष्टि, हमारा जीवन व्यवहार सब कुछ बदलने लगता है। हममें स्वाभाविक रूप से शुभ के प्रति, दिव्य के प्रति, सत्य के प्रति आकर्षण एवं अशुभ व बुरी चीजों, बुरे चिंतन के प्रति विकर्षण होने लगता है। हमारी मनोदशा सात्त्विक होने लगती है।''

वे बोले—''तब हमारी दृष्टि सकारात्मक होने लगती है। हमारे अंदर करुणा, प्रेम, दया, क्षमा आदि दिव्य मानवीय गुण विकसित होने लगते हैं और हमारे हर कर्म दिव्य व शुभ होने लगते हैं। कर्म करते हुए भी स्वयं को कर्त्ता नहीं, बल्कि भगवान ही कर्त्ता हैं इसकी अनुभूति हम करने लगते हैं। फलस्वरूप हम कर्म करते हुए भी कर्मबंधन में नहीं बँधते और हर पल मुक्ति व मोक्ष की अवस्था में रहते हुए आनंदित रहने लगते हैं।''

इसके पश्चात एक अन्य जिज्ञासु ने प्रश्न किया—''महात्मन्! मैं भगवान को कहाँ और कैसे प्राप्त करूँ?'' इस पर बाबा ने कहा—''वत्स! भगवान सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान हैं। भगवान इस अखिल विश्व ब्रह्मांड के नायक हैं। वे ही जगन्नियंता हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ प्रभु उपस्थित न हों। वे निराकार होकर भी साकार हैं। वे निर्गुण होकर भी सगुण हैं। वे अव्यक्त होकर भी व्यक्त हैं।

''सच्चा भगवद्भक्त भगवान को अपने प्रेम से कहीं भी प्रकट कर सकता है। ध्रुव, प्रह्लाद, आचार्य शंकर, रामकृष्ण परमहंस आदि अनेक भक्तों ने भगवान को अपने प्रेम से प्रकट किया है। भगवान हमारी पवित्र भावना को देखते हैं, हमारे सच्चे प्रेम को देखते हैं, उसे देखकर ही वे हमारे हृदय में, हमारी आत्मा में अपनी उपस्थिति का आभास कराते हैं। भगवान श्रीकृष्ण गीता के 10वें अध्याय के 20वें श्लोक में स्वयं कहते हैं कि मैं सब भूतों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूँ।''

वे बोले—''हमें भगवान को अन्यत्र कहीं ढूँढ़ने, खोजने की आवश्यकता नहीं। वे तो हमारी आत्मा में विराज रहे हैं। वे सर्वव्यापी प्रभु घट-घट में, सृष्टि के कण-कण में विराज रहे हैं। उन्हें देखने के लिए दिव्यदृष्टि अर्थात पवित्र दृष्टि चाहिए। जो दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरंतर प्रभु के नाम और गुणों का स्मरण, चिंतन, कीर्तन आदि करते हुए उनकी प्राप्ति के लिए सच्चे मन से प्रयास करते हैं, जो सदा प्रभु का ध्यान करते हुए उनकी उपासना करते हैं, उन्हें प्रभु की प्राप्ति अवश्य ही होती है।

''गीता के 9वें अध्याय के 26वें श्लोक में भगवान स्वयं कहते हैं कि जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्कामप्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ पत्र-पुष्पादि मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ। वहीं भगवान गीता के 9वें अध्याय के 29-30वें श्लोक में कहते हैं कि मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ। न मेरा कोई अप्रिय है और न प्रिय है, परंतु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हूँ। यहाँ भगवान यह कहना चाहते हैं कि जैसे सूक्ष्मरूप से सब जगह व्यापक अग्नि साधनों द्वारा प्रकट करने से ही प्रत्यक्ष होती है, वैसे ही सब जगह उपस्थित परमात्मा भी भक्ति से, प्रेम से भजने वाले व्यक्ति के अंत:करण में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हैं।

''इतना ही नहीं भगवान का यह स्पष्ट आश्वासन है, वचन है कि यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है अर्थात उसने भली भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है। ऐसा मानने वाला व्यक्ति शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शांति को प्राप्त करता है।''

इस प्रकार जिज्ञासुओं की जिज्ञासाओं का यथोचित समाधान करते हुए बाबा ब्रह्मदास जी ने सत्संग का समापन किया। सत्संग में ज्ञान के अमृत को पाकर सभी धन्य-धन्य हो गए। सबको एक नई जीवन-दृष्टि मिली। सबने महात्मा जी के द्वारा दिए गए उपदेशों को अपने जीवन में अपनाने और तदनुरूप जीवन जीने का संकल्प लिया। सत्संग से उन सबके जीवन में बड़ा बदलाव आया। सभी ग्रामवासी नित्य भगवत्-उपासना, भजन, ध्यान, सुमिरण करने लगे। वे बुरे व अशुभ कर्मों से दूर रहने लगे व शुभ व पुण्यकर्म करते हुए आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। मानसकार ने सत्संग की महिमा के बारे में ठीक ही कहा है—

**बिनु सतसंग बिबेक न होई।**
**राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥**
**सतसंगत मुद मंगल मूला।**
**सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥**

अर्थात सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और श्रीराम जी की कृपा के बिना सत्संग सहज में मिलता नहीं। सत्संगति आनंद और कल्याण की जड़ है। सत्संग की सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है और सब साधन तो फूल हैं। इस तरह सत्संग के लाभ को प्राप्त करके समस्त ग्रामवासी आदर्श पथ पर अग्रसर हो चले। ❑

---

**छत्रपति शिवाजी के दरबार में उत्सव का वातावरण था। धीरे-धीरे महाराष्ट्र के विभिन्न गढ़ों को जीतने के क्रम में आज शिवाजी को एक महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त हुई थी। कल्याण का किला आज उनके विजय रथ के समक्ष आ गिरा था। यह किला अजेय माना जाता था, सो स्वाभाविक था कि उस पर विजय प्राप्त करने के उपरांत शिवाजी के सैनिकों में उत्सव का माहौल बनता। इसी क्रम में जीती गई वस्तुओं को शिवाजी महाराज के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा था। सर्वप्रथम जीते गए हीरे-जवाहरातों को दिखाया गया। शिवाजी ने इन सबको कोषागार में रखने का आदेश दिया, ताकि इनसे प्राप्त मुद्राओं से प्रजा का पोषण किया जा सके।**

**यह सब अभी चल ही रहा था कि कुछ सकुचाते हुए सेनापति मोरोपंत शिवाजी से बोले—"महाराज! सैनिक कल्याण के किले से आपके लिए कुछ उपहार लाए थे, आप शायद उसे देखना चाहें।" शिवाजी से सहमति मिलने पर मोरोपंत ने एक पालकी दरबार में बुलवाई और बोले—"महाराज! इसमें कल्याण के सूबेदार मुल्ला अहमद की सुंदर पुत्रवधू गौहरबानो है। मुगलों में जीते गए राज्य की स्त्रियों से विवाह का प्रचलन है और यही सोचकर हम गौहरबानो को आपकी सेवा में लेकर आए हैं।"**

**शिवाजी के मुख पर विषाद की रेखा आई और थोड़ा क्रुद्ध होकर वे बोले—"मेरे साथ इतने वर्ष रहकर भी तुम मुझे समझ नहीं पाए मोरोपंत? नारी कोई वस्तु नहीं, जिस पर जीतने के बाद कोई भी अधिकार स्थापित कर ले। गौहरबानो को ससम्मान इनके पिता के पास छोड़कर आओ।" छत्रपति शिवाजी के इस व्यवहार ने सिद्ध कर दिया कि हमारी संस्कृति नारी के सम्मान की संस्कृति है।**

पर्व विशेष

# योद्धा संन्यासी का युग संदेश जो आज और भी अधिक प्रासंगिक है

युवाओं के चिरप्रेरक, भारतीय संस्कृति के अग्रदूत, विश्वधर्म के उद्घोषक, व्यावहारिक वेदांत के प्रणेता, वैज्ञानिक अध्यात्म के भविष्यद्रष्टा, युगनायक स्वामी विवेकानंद को शरीर त्यागे सौ वर्ष से अधिक समय हो गया है, लेकिन उनका हिमालय-सा उत्तुंग व्यक्तित्व आज भी युगाकाश पर जाज्वल्यमान सूर्य की भाँति प्रकाशमान है। उनका जीवन दर्शन आज भी उतना ही उत्प्रेरक एवं प्रभावी है, जितना सौ वर्ष पूर्व था; बल्कि उससे भी अधिक प्रासंगिक बन गया है।

तब राजनीतिक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी माँ भारती की दीन-दुर्बल संतानों को इस योद्धा संन्यासी की हुंकार ने अपनी कालजयी संस्कृति की गौरव-गरिमा से परिचय कराया था। विश्वमंच पर भारतीय धर्म एवं संस्कृति के सार्वभौम संदेश की दिग्-दिगंतव्यापी गर्जना से विश्वमनीषा चमत्कृत हो उठी थी।

आज हम राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होते हुए भी बौद्धिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक रूप से गुलाम हैं। देश भौतिक-आर्थिक रूप से प्रगति कर रहा है। समृद्ध होते एक बड़े वर्ग की खुशहाली को देखकर इसका आभास होता है और उभरती आर्थिक शक्ति के रूप में इसका वैश्विक आकलन और यहाँ की प्रतिभाओं का वर्चस् भी हमें आश्वस्त करता है, लेकिन प्रगतिशील इंडिया और आम इनसान के गरीब भारत के बीच विषमता की जो खाई मौजूद है, उसे पाटे बिना देश की समग्र प्रगति की तस्वीर अधूरी ही रहेगी।

बौद्धिक एवं सांस्कृतिक पराधीनता से मुक्त युवा शक्ति ही उस स्वप्न को साकार कर पाएगी। इसके लिए आध्यात्मिक उत्क्रांति की जरूरत है। स्वामी जी का जीवन अपने प्रचंड प्रेरणा-प्रवाह के साथ युवाओं को इस पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। हर युग में स्वामी जी के वाक्यों को मंत्रवत् ग्रहण करते हुए कितने ही युवा अपना जीवन व्यापक जनहित एवं सेवा में अर्पित करते रहे हैं। अनेक युवा उनके सम्मोहन में बँधकर आदर्शोन्मुखी जीवनधारा की ओर मुड़ रहे हैं।

स्वामी जी के शब्दों में सबसे पहले हमें स्वस्थ एवं बलिष्ठ शरीर की जरूरत है व बाकी चीजें बाद में आवश्यक हैं। वे तो यहाँ तक कहते थे कि तुम फुटबाल खेलने से मजबूत हुए शरीर के साथ गीता को ज्यादा बेहतर ढंग से समझ पाओगे। दुर्बल और रुग्ण शरीरवाला अध्यात्म के मर्म को क्या समझ पाएगा। अत: युवाओं को लोहे की मांसपेशियों की जरूरत है और साथ ही ऐसी नस-नाड़ियों की, जो फौलाद की बनी हों।

स्वामी विवेकानंद कहते थे कि शरीर के साथ नस-नाड़ियों के फौलादीपन से तात्पर्य मनोबल, आत्मबल से है, जो चरित्र का बल है। बिना इंद्रियसंयम के भला यह कैसे संभव है? साथ ही चाहिए ध्येयनिष्ठा। ऐसा महान संकल्प, जिसे कोई भी बाधा रोक न सके। जो अपने लक्ष्यसंधान हेतु ब्रह्मांड के बड़े-से-बड़े रहस्य का भेदन करने के लिए तत्पर हो, चाहे इसके निमित्त सागर की गहराइयों में ही क्यों न उतरना पड़े और मृत्यु का सामना ही क्यों न करना पड़े। इसके लिए स्वधर्म के बोध पर स्वामी जी बल देते हैं।

धर्म का सार दो शब्दों में समाहित करते हुए स्वामी जी कहते हैं—पवित्रता एवं अच्छाई। साथ ही वे यह भी सचेत करते हैं कि सच्चाई एवं अच्छाई का रास्ता विश्व का सबसे फिसलन भरा एवं कठिन मार्ग है। आश्चर्य नहीं कि कितने सारे लोग इसके रास्ते में ही फिसल जाते हैं, बहक-भटक जाते हैं और कुछ मुट्ठीभर इसके पार चले जाते हैं। अपने उच्चतम ध्येय के प्रति मृत्युपर्यंत निष्ठा ही चरित्रबल एवं अजेय शक्ति को जन्म देती है। यह शक्ति निस्संदेह सत्य की होती है।

यही सत्य संकटों में, विषमताओं में, प्रतिकूलताओं में रक्षाकवच बनकर दैवी संरक्षण देता है। इसके समक्ष धन, ऐश्वर्य, सत्ता यहाँ तक की समस्त विद्याएँ एवं सिद्धियाँ तुच्छ हैं। तीनों लोकों का वैभव भी इसके सामने कुछ नहीं। चरित्र की शक्ति अजेय है, अपराजेय है, लेकिन यह एक दिन में विकसित नहीं होता। हजारों ठोकरों को खाते हुए इसका गठन करना होता है। जब यह विकसित हो जाता है तो एक

व्यक्ति में पूरे विश्व-ब्रह्मांड के विरोध का सामना करने की शक्ति-सामर्थ्य पूर्ण प्रवाह से आ जाती है।

आज जरूरत ऐसे ही चरित्रनिष्ठ युवाओं की है। स्वामी जी सिंहगर्जना करते हुए कहते हैं कि मुझे ऐसे मुट्ठीभर भी युवक-युवतियाँ मिल जाएँ तो मैं समूचे विश्व को हिला दूँ। ऐसे पवित्र और निस्स्वार्थ युवा ही किसी राष्ट्र की सच्ची संपत्ति हैं। आदर्श के प्रति समर्पित आत्मबलिदानी युवाओं की आज जरूरत है, जो लक्ष्यहित-हेतु बड़े-से-बड़ा त्याग करने के लिए तैयार हों।

'मेरा जीवन एवं ध्येय' उद्बोधन में स्वामी विवेकानंद अपनी किशोरावस्था की ऊहापोह का मार्मिक चित्रण करते हुए कहते हैं—"युवावस्था में मैं भी निर्णायक मोड़ पर था, जब मैं महीनों निर्णय नहीं कर पा रहा था कि सांसारिक जीवनयापन करूँ या गुरु के बताए मार्ग पर चलूँ। अंत में निर्णय गुरु के पक्ष में गया, जिसमें कि राष्ट्र एवं व्यापक विश्वमानव का हित निहित था और मैंने क्षुद्र जीवन की अपेक्षा विराट ध्येय के लिए अर्पित जीवन के पक्ष में निर्णय लिया। निस्संदेह महान कार्य महान त्याग की माँग करते हैं। खून से लथपथ हृदय को हाथ में लेकर चलना पड़ता है, तब जाकर कहीं महान कार्य सिद्ध होते हैं। बिना त्याग के किसी बड़े कार्य की आशा नहीं की जा सकती।"

एक सफल जीवन का मर्म स्पष्ट करते हुए स्वामी जी मार्गदर्शन करते हैं—"जीवन में किसी एक आदर्श का होना अनिवार्य है। इसी आदर्श को जीवनलक्ष्य बना दें। इस पर विचार करें, इसका स्वप्न लें, उसे अपने रोम-रोम में समाहित कर लें। जीवन का हर पल इससे ओत-प्रोत रहे। हर क्षण उसके महान विचारों में निमग्न रहें व इस पावन ध्येय का सुमिरन करते रहें। इसी के गर्भ से महान कार्य प्रस्फुटित होंगे। हमें गहराई में उतरना होगा, तभी हम जीवन का कुछ सार तत्त्व पा सकेंगे व जग का कुछ भला कर पाएँगे।

"इसके लिए हमें पहले स्वयं पर विश्वास करना होगा, फिर भगवान एवं दूसरों पर। अच्छाई के मार्ग पर किसी से कोई उम्मीद न रखें। अपने विश्वास पर दृढ़ रहें, बाकी सब अपने आप ठीक होता जाएगा। तुम देखोगे कि कैसे विश्व तुम्हारा अनुकरण करता है, लेकिन शुरुआत विरोध से होगी। कठिन परीक्षाओं से गुजरते हुए तुम्हें अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करनी होगी। इसके उपरांत ही तुम्हारे नेक इरादों को स्वीकृति मिलेगी।

"स्वधर्म के साथ युगधर्म का बोध भी आवश्यक है। अपने कल्याण के साथ राष्ट्र, पीड़ित मानवता की सेवा जीवन का अभिन्न अंग बने। ऐसा धर्म किस काम का, जो भूखों का पेट न भर सके। शिवभावे जीव सेवा का आदर्श प्रस्तुत करना होगा। अगले 100 वर्षों तक हमें किसी भगवान की जरूरत नहीं है। गरीब, पीड़ित, शोषित, अज्ञानग्रस्त, पिछड़ा समुदाय ही तुम्हारा भगवान है। लानत है ऐसे शिक्षितों पर जो उनके आँसू न पोंछ सकें, जिनके बल पर इस जीवन की दक्षता को हम अर्जित करते हैं।

"ऐसी विषम परिस्थिति में उम्मीद है उन युवाओं से जो कुछ भी नहीं हैं। जिनकी एकमात्र पूँजी है—भाव संवेदना तथा आदर्श प्रेम और जो त्याग व सेवा के पथ पर बढ़ने के लिए तत्पर हैं। ऐसे समर्पित युवा ही ईश्वरीय योजना का माध्यम बनेंगे। उन्हें वह सूझ व शक्ति मिलेगी कि वे कुछ सार्थक कार्य कर सकें। वे ही अपने उच्च चरित्र, सेवाभाव और विनय द्वारा देश, समाज एवं विश्व का कुछ भला कर सकेंगे। मेरा आशीर्वाद ऐसे युवाओं के साथ है। जब मेरा शरीर न रहेगा तो मेरी आत्मा उनके साथ काम करेगी।" स्वामी विवेकानंद द्वारा वर्षों पूर्व कहे गए ये शब्द आज भी एक आवाहन के रूप में महसूस किए जा सकते हैं। ❑

**हमारी लड़ाई व्यक्तियों से नहीं, अनाचार से होगी। रोगियों से नहीं, हम रोगों को मारेंगे। पत्ते तोड़ते फिरने की अपेक्षा जड़ पर कुठाराघात करेंगे। भावी महाभारत अपने अलग ही युद्ध कौशल से लड़ा जाएगा। हम प्रवाहों से जूझेंगे, धाराओं को मोड़ेंगे और अनाचार का विरोध करेंगे।**

***—परमपूज्य गुरुदेव***

# सतगुरु सम कोई नहीं, सात द्वीप नौ खंड

**गुरु पारस को अंतरो, जानत हैं सब संत।**
**वह लोहा कंचन करे, ये करि लेय महंत॥**

संत कबीर के उपर्युक्त दोहे में गुरु की महान महिमा गायी गई है, जिसमें कबीर कहते हैं कि गुरु और पारस में अंतर है, यह सभी संत जानते हैं। पारस तो लोहे को सोना ही बनाता है, पर गुरु शिष्य को अपने समान ही महान बना देते हैं।

गुरु की ऐसी महानता के कारण ही तो उन्हें ईश्वरतुल्य माना गया है। वस्तुतः सद्गुरु साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही हैं। निराकार ब्रह्म ही जीव के उद्धार के लिए साकार सद्गुरु के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं। गुरु और ईश्वर भिन्न नहीं, अभिन्न ही हैं। ऐसे सद्गुरु की प्राप्ति मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है।

समुद्र में न जाने कितने भयानक व भयावह तूफान आते रहते हैं, जिनमें न जाने कितने नाव और नाविक तथा उस पर सवार लोग विशाल समुद्र के गर्भ में समा जाते हैं, पर जिस नाव की पतवार कुशल नाविक के हाथ में होती है, वह बड़े-से-बड़े समुद्री तूफानों में भी अपनी नौका व उस पर सवार लोगों को सुरक्षित किनारे लगा देता है; पार लगा देता है।

यह जीवन भी भवसागर है; जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह के रूप में अनेक झंझावात व तूफान उठते रहते हैं। व्यक्ति के चित्त में उसके जन्म-जन्मांतरों के, कर्म संस्कारों के तूफान आते रहते हैं—जिनमें अबोध, अज्ञानी लोग अपने सुरदुर्लभ मानव जीवन की घोर हानि कर बैठते हैं।

जो लोग सद्गुरु की नाव में सवार हैं, वे गुरुज्ञान से न सिर्फ भौतिक जीवन में सुख-शांति व वैभव पाते हैं; बल्कि गुरुज्ञान का अमृत पीकर अपने चित्त पर जन्म-जन्मांतरों से जमी कर्म संस्कारों की कालिख को धोकर उसे निर्मल बना लेते हैं और अपने हृदय में दहकते हुए अँगारे के रूप में, अपने हृदय में जल रही दिव्य ज्योति में ही परमात्मा की दिव्य अनुभूति पाकर जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होकर उससे भी आगे पराभक्ति को प्राप्त कर लेते हैं और इस भवसागर को गुरुकृपा से सुरक्षित पार कर जाते हैं।

जो देवदुर्लभ मानव तन पाकर अपने लौकिक और पारलौकिक जीवन को आनंद और उमंग से भरकर भगवत् प्राप्तिरूपी जीवन के परम लक्ष्य को पाना चाहते हैं, उन्हें निराकार-निर्गुण ब्रह्म के साकार और सगुण रूप सद्गुरु को परमात्मभाव से पूजना चाहिए और उनका नित्य ध्यान करना चाहिए। सदैव यह भावना रखनी चाहिए कि सद्गुरु मेरे अंदर और बाहर सर्वत्र व्याप रहे हैं। सद्गुरु जो कुछ भी कहें, वह शिष्य के लिए मंत्र सदृश्य ही है। अस्तु गुरु के द्वारा बताए गए कार्य को किसी भी कीमत पर शिष्य को संपन्न करना चाहिए।

गुरु की मूर्तिपूजा तक सीमित रहने वाली गुरुभक्ति अधूरी है। असली गुरुभक्ति तो गुरु के द्वारा बताए गए आदर्श और अनुशासन को जीवन में अक्षरशः उतार लेने और उसे जीते रहने में ही निहित है। गुरु का कार्य साक्षात् नारायण का ही कार्य है।

गुरु की योजना साक्षात् नारायण की ही योजना है। गुरु का स्वप्न साक्षात् नारायण का ही स्वप्न है। शिष्य को बड़े-बड़े कष्टसाध्य यज्ञ, अनुष्ठान, पुरश्चरण, व्रत आदि से मिलने वाले फल गुरुसेवा से, गुरुकार्य करने से स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं।

अतः शिष्य को तन, मन, धन से, श्रद्धा से, भक्ति से गुरुकार्य में तल्लीन रहना चाहिए और उसे करते हुए स्वयं को बड़भागी समझना चाहिए कि ऐसा सुअवसर, भगवान की योजना में, भगवान के कार्य में अपनी सेवा समर्पित करने का यह परम सुयोग नारायणरूपी सद्गुरु की कृपा से ही हमें प्राप्त हुआ है। अस्तु हमें किसी भी कीमत पर इस महान सुयोग को, महान अवसर को अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। इसी में हमारा उद्धार है, हित है, कल्याण है, मंगल है, शुभ है। इसी में आनंद है, परमानंद है, ब्रह्मानंद है। तभी तो संत कबीर ने कहा है—

**सतगुरु सम कोई नहीं, सात द्वीप नौ खंड।**
**तीन लोक न पाइए, अरु इकइस ब्रह्मांड॥**

अर्थात आप सात द्वीप, नौ खंड, तीन लोक, इक्कीस ब्रह्मांडों में सद्गुरु के समान हितकारी किसी को नहीं पाएँगे।

अत: ऐसे परम हितकारी गुरु के वचनों का पालन शिष्य को अक्षरश: करना चाहिए। ब्रह्मज्ञानी गुरु अपनी ब्रह्मदृष्टि से हमारे कई जन्मों को चलचित्र की भाँति देख लेते हैं और तदनुरूप ही हमें साधन, भजन, आदेश, अनुशासन को अपनाने की सलाह देते हैं। गुरु के वचनों का पालन करते समय शिष्य को उसमें हानि-लाभ आदि का विचार न करते हुए सिर्फ गुरु आज्ञा का पालन करना चाहिए।

आज तक जिसने भी अपने गुरु के आदेश का पालन किया, उसका मंगल-ही-मंगल हुआ है। माता उमा ने अपने गुरु नारद जी के कहने पर भगवान शिव को पति रूप में पाने के लिए कठोर तप किया और अंतत: वह भगवान शिव को पतिरूप में प्राप्त कर सकीं। इसलिए माता उमा गुरुभक्ति व गुरु के आदेश का पालन करने को लेकर अपने निज अनुभव को अभिव्यक्त करते हुए रामचरितमानस में कहती हैं—

**नारद बचन न मैं परिहरऊँ।**
**बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ॥**
**गुर कें बचन प्रतीति न जेही।**
**सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥**

अर्थात पार्वती जी कहती हैं कि मैं नारद जी के वचनों को नहीं छोड़ूँगी, चाहे मेरा घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि स्वप्न में भी सुगम नहीं होते।

हमें अपने गुरु के वचनों पर पूर्ण विश्वास करते हुए उनका सदैव पालन करना चाहिए। गुरु के वचनों को शुभ समझकर उनका पालन करना चाहिए; क्योंकि गुरु सब प्रकार से हमारे परम हितकारी हैं। मोक्ष, मुक्ति, प्रभुदर्शन आदि परम लाभ गुरुसेवा से, गुरुकार्य करने से, गुरुकृपा से शिष्य को स्वत: ही प्राप्त हो जाते हैं। ❑

**वर्षों पहले सौराष्ट्र में एक सहृदय व्यापारी रहा करते थे, जिनका नाम था रामचंद्र भाई। वे हीरे-जवाहरातों के प्रसिद्ध व्यापारी थे। एक बार उन्होंने एक अन्य व्यापारी के साथ तत्कालीन दर पर जवाहरात बेचने का सौदा किया। उस समय जवाहरात के दाम काफी कम थे। सौदा इस आधार पर तय हुआ कि एक माह बाद रामचंद्र भाई वह जवाहरात उस व्यापारी को उपलब्ध करा देंगे। संयोगवश उस माह जवाहरातों के दाम बढ़ने लगे और बढ़ते-बढ़ते उनकी दर इतनी पहुँची कि यदि व्यापारी उस कीमत पर उन जवाहरातों को ख़रीदता तो उसका दिवाला निकल जाता। हो सकता था कि घर इत्यादि बेचने की भी नौबत आ जाती।**

**यह जानते हुए भी कि ऐसा होने पर रामचंद्र भाई करोड़पति बन सकते हैं, वे उस व्यापारी के घर गए और उससे बोले—"मैं तुम्हारी तकलीफ से परिचित हूँ और इस कठिन समय में तुम्हारी मजबूरी का फायदा नहीं उठाना चाहूँगा।" उन्होंने उसे एक माह पुराने दामों पर ही जवाहरात बेचे, ताकि उसे नुकसान न उठाना पड़े।**

# स्वयं का अर्पण ही है, संपूर्ण समर्पण

सरिताएँ अपने पथ पर अविराम बहती जाती हैं, भागती जाती हैं, दौड़ती जाती हैं। उनके पथ पर हजारों बाधाएँ आती हैं, हजारों मुश्किलें आती हैं, हजारों कठिनाइयाँ आती हैं, वन-पर्वत और बड़ी-बड़ी चट्टानें और दीवारें आती हैं, पर वे सबको लाँघती हुई, फाँदती हुई, उफनती हुई अपना मार्ग बनाती जाती हैं और अपने लक्ष्य की ओर और अधिक तीव्रता व संकल्प के साथ बढ़ती जाती हैं।

अंतत: वे सागर में विलीन होकर स्वयं भी सागर बन जाती हैं, महासागर बन जाती हैं। तब सरिता से सागर, महासागर होने का जो आनंद है, स्वयं का जो विस्तार है, उसे सिर्फ और सिर्फ वे ही महसूस कर पाती हैं, अन्य कोई नहीं।

वैसे ही जो साधक साधना-पथ पर अविराम बढ़ते जाते हैं, जो साधना-पथ पर मिलने वाली मुश्किलों, कठिनाइयों, बाधाओं से न घबराकर उनका सामना करते जाते हैं, जो अपनी कामनाओं, वासनाओं, इच्छाओं को दरकिनार कर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ भगवान के पथ पर आगे बढ़ते जाते हैं—उन्हें अंतत: उनकी मंजिल मिल ही जाती है; उन्हें भगवत्स्पर्श, भगवत्कृपा ही नहीं मिलती, बल्कि वे स्वयं भी भगवत्मय हो जाते हैं, वे स्वयं भी ब्रह्ममय हो जाते हैं।

सत्-चित्-आनंदस्वरूप प्रभु से घुल-मिलकर वे भी सत्-चित्-आनंदस्वरूप हो जाते हैं। वे भी बिंदु से सिंधु हो जाते हैं। वे भी जीवात्मा से परमात्मा हो जाते हैं। वे भी नर से नारायण और मानव से माधव हो जाते हैं। बिंदु से सिंधु होने का आनंद ही परमानंद है, ब्रह्मानंद है। इस आनंद के समक्ष दुनिया के सारे सुख, सारे आनंद बहुत तुच्छ और फीके जान पड़ते हैं।

इस परम सुख, परम आनंद को सिर्फ और सिर्फ सच्चे साधक ही अनुभूत कर पाते हैं अन्य दूसरा कोई नहीं। इस अध्यात्म-पथ पर, साधना-पथ पर चलने वाले लोगों में बहुत थोड़े ही ऐसे होते हैं, जो इस अवस्था को प्राप्त कर पाते हैं। भावावेश में आकर इस पथ पर चल तो असंख्य लोग पड़ते हैं, पर रास्ते में मिलने वाली कठिनाइयों का सामना बहुत कम ही लोग कर पाते हैं।

वैसे लोग या तो साधना-मार्ग से विचलित हो इस पथ का परित्याग कर देते हैं या फिर साधना को ही, अध्यात्म को ही झूठा बताते फिरते हैं। वैसे लोग साधना- पथ पर देर तक टिके नहीं रह पाते। क्यों ? क्योंकि उनकी श्रद्धा की जड़ें गहराई तक नहीं गई होती हैं। उनकी भगवद्विश्वास की जड़ें उतनी गहराई तक नहीं गई होती हैं।

फलस्वरूप कामनाओं का, वासनाओं का, लोभ का, प्रलोभन का कोई प्रवाह उनके अंदर जैसे ही उभरा वैसे ही, उसी पल, उसी क्षण उनकी कामना की जड़ें हिल उठती हैं। उनकी श्रद्धा की, विश्वास की जड़ें उस प्रवाह में अगले ही पल उखड़ आती हैं। ऐसे लोगों के लिए साधना क्रीड़ा-कौतुक से ज्यादा कुछ भी नहीं। अस्तु ऐसे लोग ही साधना में असफल हो हताश-निराश होते हैं। पर जिनकी श्रद्धा की जड़ें, विश्वास की जड़ें गहरी से भी गहरी हैं—उनकी साधना को कामनाओं, वासनाओं, इच्छाओं का प्रबल-से-प्रबल वेग भी बहा नहीं पाता। ऐसे शूरमाओं को ही साधना-पथ पर विजयश्री हस्तगत होती है।

साधना-पथ पर चलते हुए अक्सर हम अपनी ही मान्यताओं, मनोकामनाओं व इच्छाओं को अपने सिर पर ढोते फिरते हैं और इसलिए हम साधना में असफल हो हताश व निराश होते हैं। आवश्यकता है अपने सिर पर रखी अपनी ही मान्यताओं, मनोकामनाओं और इच्छाओं से भरी भारी-भरकम टोकरी को उतार फेंकने की और स्वयं को पूर्णत: सच्चिदानंदघन भगवान के हाथों सौंप देने की, स्वयं को पूर्णत: उनके हवाले कर देने की।

ऐसा समर्पण साधक तभी कर पाता है, जब उसकी आत्मा से यह पुकार उठने लगी हो कि बस, अब काम, क्रोध, मोह, लोभ से भरा हुआ जीवन बहुत हो चुका, अज्ञानमय और अंधकारमय जीवन अब मुझसे और सहा नहीं जाता और न ही यह आनंद देता है, और अब तो हमारे जीवन में भगवान के चैतन्य का अवतरण होना ही चाहिए,

अब तो इस जीवन को पूर्णत: आनंदघन भगवान के हवाले कर ही देना चाहिए।

हम अच्छे-बुरे जैसे भी हैं हम भगवान के हैं और भगवान हमारे हैं। अस्तु हमें अब अपने आप को भगवान के हवाले कर देना है। हमें स्वयं को पूर्णत: भगवान को सौंप देना है। अब मेरी कोई मरजी नहीं, मेरी कोई अर्जी नहीं, जो भगवान की मरजी है, वही मेरी भी मरजी है। जो भगवान की इच्छा है, वही मेरी भी इच्छा है। अब अपनी कोई इच्छा नहीं। यही आत्मसमर्पण की, पूर्ण समर्पण की दशा है।

समर्पण की इस भावदशा को प्राप्त करते ही साधक के सिर पर उसकी निजी मान्यताओं, मनोकामनाओं और इच्छाओं की टोकरी नहीं, वरन भगवान की मान्यताओं और इच्छाओं की टोकरी होती है। वह वही करता है, जो भगवान उसके हाथों से कराते हैं। वह वही सोचता है, जो उसके अंदर वास कर रहे भगवान सोचते हैं। वह भगवान के अधरों पर लगी उस बाँसुरी के समान है, जिससे अब भगवान के स्वर फूटने लगे हैं, जिससे अब भगवान के अपने ही गीत, भगवान के द्वारा ही गाए जाने लगे हैं। साधक तो सिर्फ बाँसुरी बन भगवान के अधरों पर बैठा भर है। उसमें न तो उसका अपना स्वर है और न ही गीत। बाँसुरी में स्वर भी भगवान के हैं और गीत भी उन्हीं के हैं।

पूर्ण समर्पण के बाद साधक एक कोरा कागज मात्र बनकर रह जाता है। ऐसा कागज, जिस पर साधक ने स्वयं कुछ भी नहीं लिखा। न ही अपनी इच्छाएँ, न ही अपनी मान्यताएँ। वह कागज अब कोरा है, जिस पर कोई धब्बा नहीं, कोई लकीर नहीं, वह सिर्फ और सिर्फ सफेद कागज भर है। साधक के ऐसे कोरे हृदय पर ही भगवद्इच्छा अंकित हो सकती है। सचमुच मनुष्य की इच्छा, उसकी व्यक्तिगत इच्छा उसको सीमाओं में बाँधे रखती है, अटकाए रखती है।

जब तक मनुष्य, जब तक साधक पूरे का पूरा कोरे कागज-सा नहीं बन जाता, तब तक उस पर भगवद्इच्छा अंकित नहीं की जा सकती और जब तक साधक के चित्त पर, हृदय पर, आत्मा पर भगवान की इच्छा अंकित नहीं हो जाती, तब तक मनुष्य का, साधक का रूपांतरण संभव नहीं और तब तक उसे भगवान के हाथों का यंत्र हो जाने का अवसर और सुयोग भी नहीं मिल पाता। अस्तु भगवद्इच्छा को धारण करने के लिए मनुष्य का, साधक का आत्मसमर्पण, पूर्ण-संपूर्ण आत्मदान आवश्यक होता है और जब वह ऐसा कर लेता है तभी उसकी स्थिति कोरे कागज जैसी हो पाती है, जिस पर भगवान स्वयं कुछ लिखते हैं, कुछ अंकित करते हैं, जिससे मनुष्य को पल भर में ही लोक-परलोक का सारा सौंदर्य, समस्त आनंद हस्तगत हो जाता है।

समर्पण का अर्थ ही है स्वयं का अर्पण अर्थात स्वयं को पूर्णत: दे देना, स्वयं को पूर्णत: खाली कर देना। पूर्ण समर्पण का अर्थ है स्वयं को समग्र रूप से, सम्यक रूप से खाली कर देना। प्रथम समर्पण तो मन से ही होता है। इसलिए पहले तो मन ही खाली हो जाता है। पुराने अभ्यास, पुरानी मान्यताएँ, इच्छाएँ, सोचने-विचारने के पुराने तरीके,

**यज्ञात्प्राण स्थितिर्मते जपान्मंत्रस्य जाग्रतिः।**
**अति प्रकाशवांश्चैव, मंत्रो भवति लेखनात्॥**

*अर्थात यज्ञ से मंत्र में प्राण आते हैं, जप से मंत्र जाग्रत होता है और लिखने से मंत्र की आत्मा प्रकाशित होती है।*

सब शांत होने लगते हैं, समाप्त होने लगते हैं। उसका मन तब भगवान का मन हो जाता है। तब उसका मन भी उसका मन नहीं रहता, वरन भगवान का मन हो जाता है। ऐसे में उसके देह, प्राण, मन, बुद्धि आदि सभी भगवान के हो जाते हैं। वे सभी भगवान के अंग-अवयव बन जाते हैं।

तब उससे भगवान ही सोचते हैं, भगवान ही विचारते हैं, भगवान ही उसके हाथों से सब कुछ करते हैं। वह तो भगवान के हाथों का एक यंत्र मात्र बन जाता है। वह पल-पल यह अनुभूति कर रहा होता है कि उसके अंदर एक असीम आनंद का दरिया बह रहा है। उसके अंदर ज्ञान का, प्रेम का सागर उफन रहा है, लहरा रहा है और वह उसमें साक्षी भाव से बहता जा रहा है। सचमुच संपूर्ण समर्पण ही भगवत्कृपा, भगवत्स्पर्श और भगवत्प्राप्ति का आधार है। संपूर्ण समर्पण से ही होता है साधक का संपूर्ण रूपांतरण। संपूर्ण समर्पण से ही बनता है साधक भगवान के हाथों का यंत्र। ❑

# राष्ट्रहित

देश की एकता और अखंडता सर्वोपरि है। जब तक देश अँगरेजी राज के अधीन था, तब तक देश के सभी आंदोलनों और नीतियों का एक ही उद्देश्य था, विदेशी शासकों को बाहर निकालकर स्वतंत्रता हासिल करना, लेकिन स्वतंत्रता के बाद नए भारत का क्या चेहरा होगा? हम किस दिशा में आगे बढ़ेंगे? इन पहलुओं पर गंभीर विचार की जरूरत थी। ऐसे लोग थे, जिन्होंने उस समय भी इन प्रश्नों पर विचार किया था।

गांधी जी ने स्वयं अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में स्वतंत्र भारत का अपना विचार रखा था। इससे पहले लोकमान्य तिलक ने अपनी पुस्तक 'गीता रहस्य' में उस समय दुनिया में फैले विचारों पर तुलनात्मक चर्चा की थी। क्रांतिकारी भी अपने तरीके से स्वतंत्रता के लिए काम कर रहे थे। कांग्रेस ने लोकतांत्रिक समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित किया था।

विश्व में दूसरे देश भी हैं। उन्होंने पिछले एक हजार वर्षों में अभूतपूर्व प्रगति की है। हम अपने देश को कहाँ और कैसे ले जाना चाहते हैं? इसके लिए हमें पश्चिम के विभिन्न आर्थिक और राजनीतिक सिद्धांतों के आधार और उनकी वर्तमान स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए। हमारे देशवासियों के सर्वांगीण विकास के सपने को पूरा करने के लिए हमें कौन-सी दिशा लेनी चाहिए।

हर देश की अपनी अनूठी ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियाँ होती हैं। दूसरी तरफ, जरूरी नहीं कि समय और स्थान के अनुसार कहीं उपजने वाले सभी विचार और आदर्श स्थानीय ही हों। इसलिए दूसरे समाजों में हुए पिछले और वर्तमान विकास की पूरी तरह से अनदेखी करना निश्चित तौर से मूर्खतापूर्ण है। दूसरे समाजों के ज्ञान को आत्मसात् करते समय सही होगा कि हम उनकी गलतियों और विकृतियों को नहीं अपनाएँ।

यहाँ तक कि उनके ज्ञान को भी हमारी खास परिस्थितियों के अनुकूल किया जाना चाहिए। संक्षेप में, जहाँ तक शाश्वत सिद्धांतों और सत्यों की बात है, हमें संपूर्ण मानवता के ज्ञान और लाभ को आत्मसात् करना चाहिए। इनमें से जो हमारे बीच में उत्पन्न हुए हैं, उन्हें स्पष्ट करके बदलते समय के अनुरूप ढालना होगा और जिन्हें हमने दूसरे समाजों से लिया है, उन्हें अपनी परिस्थितियों के अनुरूप ढालना होगा।

राष्ट्रवाद देशों के बीच में संघर्ष को बढ़ाता है और उसके कारण वैश्विक संघर्ष बढ़ते हैं; जबकि यथास्थिति को विश्व शांति का पर्याय माना जाए तो बहुत से छोटे राष्ट्रों की स्वतंत्र होने की आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती। कुछ लोग वैश्विक एकता और राष्ट्रवाद को दबाने की बात कहते हैं; जबकि दूसरे लोग वैश्विक एकता को काल्पनिक आदर्श मानते हैं और जोर देते हैं कि राष्ट्र का हित सर्वोपरि होना चाहिए। इसी तरह की मुश्किल समाजवाद और लोकतंत्र के बीच सामंजस्य बनाने में भी आती है।

लोकतंत्र व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अनुमति देता है, लेकिन ठीक इसी को पूँजीवाद के साथ मिलाकर शोषण और एकाधिकारवाद के लिए प्रयोग किया गया। समाजवाद को शोषण खतम करने के लिए लाया गया, लेकिन इसने व्यक्ति की स्वतंत्रता और सम्मान को खतम कर दिया। पश्चिमी आदर्श मानव विचार और सामाजिक संघर्ष में हुई क्रांति का उत्पाद हैं। ये मानव जाति की एक दूसरी आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनकी अवहेलना करना उचित नहीं होगा। हम यह स्वीकार करते हैं कि जीवन में विविधता और बहुलता है, लेकिन हमने हमेशा उनके पीछे एकता को खोजने की कोशिश की। यह कोशिश पूरी तरह से वैज्ञानिक है। हम न केवल सामूहिक या सामाजिक जीवन में, बल्कि निजी जीवन में भी जीवन को एकीकृत रूप में लेते हैं।

जब लोगों का समूह एक लक्ष्य, एक मिशन और एक आदर्श के साथ रहता है और किसी खास भूमि को अपनी मातृभूमि मानता है तो यह समूह राष्ट्र का निर्माण करता है। राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन संस्थाओं का निर्माण किया जाता है। परिवार, जाति, संघ आदि इसी तरह की संस्थाएँ हैं। संपत्ति, विवाह भी संस्थाएँ हैं। समाज में वर्ग

होते हैं। यहाँ भी जातियाँ रही हैं, लेकिन हमने एक जाति से दूसरी जाति के बीच संघर्ष को कभी इसके पीछे का मूलभूत विचार नहीं माना। चार जातियों के हमारे विचार में उन्हें विराट पुरुष के चार अंगों के रूप में माना गया है।

माना जाता है कि विराट पुरुष के सिर से ब्राह्मण, हाथों से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। ये अंग एकदूसरे के पूरक ही नहीं हैं, बल्कि इससे भी ज्यादा ये एक स्वतंत्र इकाई हैं। अगर इस विचार को नहीं समझा गया तो जातियों में एकदूसरे का पूरक बनने के बजाय संघर्ष पैदा होगा। इसलिए शरीर की रक्षा करनी चाहिए। धर्म मंदिरों और मसजिदों तक सीमित नहीं है।

भगवान की पूजा धर्म का बस एक हिस्सा भी है। धर्म कहीं ज्यादा व्यापक सिद्धांत है। पूर्व में मंदिर लोगों को धर्म के बारे में शिक्षा देने का प्रभावी माध्यम होते थे, हालाँकि जिस तरह विद्यालय स्वयं ज्ञान को नहीं बनाते, उसी तरह मंदिर धर्म को नहीं बनाते। एक बच्चा प्रतिदिन विद्यालय जाकर भी अशिक्षित रह सकता है। इसी तरह हो सकता है कि एक व्यक्ति प्रतिदिन मंदिर या मसजिद जाकर भी धर्म के बारे में कुछ नहीं जान पाए। मंदिर या मसजिद पंथ, मत, संप्रदाय का निर्माण तो करते हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि धर्म का निर्माण भी करते हों।

धर्म और पंथ (रिलिजन) अलग-अलग हैं। हमें पता है कि धर्म के नाम पर भी लड़ाइयाँ लड़ी गईं। फिर भी पंथ के नाम पर हुई लड़ाई और धर्म के नाम पर हुई लड़ाई, दोनों अलग चीजें हैं। पंथ का मतलब है—एक संप्रदाय या मत। इसका मतलब धर्म नहीं है। धर्म बहुत व्यापक विचार है। यह जीवन के सभी पहलुओं से जुड़ा है। यह समाज को सँभालता है। इससे भी बढ़कर यह पूरे विश्व को सँभालता है। इसका मतलब जो सँभाले वह 'धर्म' है।

धर्म का मूलभूत सिद्धांत अनंत और सार्वभौमिक है। देश का संविधान एक मौलिक दस्तावेज है, जो देश में बने सभी कानूनों पर लागू होता है। एक संघ में इकाइयों की संप्रभुता होती है। संघीय व्यवस्था में राज्यों को मूलभूत शक्ति माना जाता है और केंद्र मात्र राज्यों का संघ होता है।

आर्थिक व्यवस्था के जरिए उन सभी बुनियादी चीजों का उत्पादन होना चाहिए, जो व्यक्ति के विकास और रख-रखाव के साथ-साथ राष्ट्र के विकास और सुरक्षा के लिए जरूरी हैं। उपभोग और उत्पादन की अंधी दौड़ में शामिल होना बुद्धिमानी नहीं होगी, उससे लगता है जैसे मानव को मात्र उपभोग के लिए बनाया गया है।

पूँजीवादी सोचते हैं कि पूँजी और उद्योग—उत्पादन के महत्त्वपूर्ण घटक हैं, इसलिए अगर वे लाभ का बड़ा हिस्सा लेते हैं तो उन्हें लगता है कि यह उनका ही हिस्सा है। दूसरी तरफ साम्यवादी उत्पादन के लिए केवल कामगार वर्ग को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसलिए वे उत्पादन का बड़ा हिस्सा कामगारों को देते हैं। दोनों ही विचार सही नहीं हैं। सही माने में हमारा नारा होना चाहिए कि जो कमाता है, वह खिलाएगा और प्रत्येक व्यक्ति के पास पर्याप्त भोजन होगा।

किसी भी आर्थिक व्यवस्था को मानव जीवन की न्यूनतम बुनियादी जरूरतों को अवश्य पूरा करना चाहिए। मोटेतौर पर भोजन, कपड़ा और मकान बुनियादी जरूरतें हैं। इसी तरह व्यक्ति को शिक्षित करना समाज की जिम्मेदारी है, जिससे वह व्यक्ति समाज के प्रति अपने दायित्वों को निभा सके। किसी व्यक्ति के बीमार होने पर समाज को उसके इलाज और भरण-पोषण की व्यवस्था करनी चाहिए। अगर इन आवश्यकताओं को पूरा किया जाए तो सही माने में धर्म का राज होगा; नहीं तो अधर्म का राज होगा। इसी से राष्ट्र का विकास होगा। ❑

**दो विद्वानों में इस बात पर विवाद हो गया कि सामर्थ्य ज्यादा बड़ी है या बुद्धि। दोनों स्वयं को सही बता रहे थे और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहे थे। गुरु ने दोनों को पास बुलाकर कहा—"सामर्थ्य और बुद्धि, दोनों की सार्थकता साथ-साथ रहने में है। बिना बुद्धि के सामर्थ्य किसी काम की नहीं और बिना सामर्थ्य के बुद्धि का कोई महत्त्व नहीं। दोनों साथ रहते हैं तो ही उन्नति हो पाती है।"**

# अनुभूतिजन्य है सत्य

सत्य धर्म की परिभाषा है। सत्य धर्म है और असत्य अधर्म। यहाँ सत्य का अर्थ केवल वाणी की सच्चाई ही नहीं है, बल्कि धर्म शब्द की भाँति इसका भी वही व्यापक अर्थ है और इसके अंतर्गत स्वभाव, गुण, नियम, विधान इत्यादि आते हैं। प्रकृति का अपना गुण-स्वभाव है, नियम-विधान हैं। उन नियम-विधानों की सच्चाई से सारा चराचर विश्व बँधा हुआ है। इस अर्थ में सत्य और धर्म पर्यायवाची शब्द हैं।

प्रकृति के स्वभाव की सच्चाई को हम जितना समझते और स्वीकारते हैं, उतना ही धर्म को भी स्वीकार करते हैं। सच्चाई तीन प्रकार से स्वीकारी जाती है। स्वीकारने का पहला कदम श्रद्धा की भूमिका से आरंभ होता है। महात्मा बुद्ध ने अपने बोधिज्ञान द्वारा मिली इस सच्चाई को शब्दों में व्यक्त किया था। हमारे मन में उन महापुरुष के प्रति श्रद्धा जागी और हमने उनके शब्दों को स्वीकार किया।

यह शब्द सत्य को स्वीकार करना है, परंतु शब्द सत्य में सच्चाई की परिपूर्णता नहीं हुआ करती है। जब किसी अनुभूतिजन्य ज्ञान को शब्दों पर उतारा जाता है यानी जब कोई सत्यद्रष्टा ऋषि शब्दस्रष्टा बनता है तो सत्य का कुछ अंश नष्ट हो ही जाता है। इसलिए शब्द सत्य आंशिक सत्य ही होता है; क्योंकि शब्द और भाषा की अपनी सीमाएँ हैं।

उन्नत-से-उन्नत भाषा भी आंतरिक अनुभूतियों को स्पष्टतया व्यक्त कर सकने में असमर्थ रहती है और फिर सत्यशोधकों की कुछ अनुभूतियाँ ऐसी हैं, जो वर्णनातीत होती हैं। शब्दों द्वारा उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके बारे में नेति-नेति कहा जाता है। कहने वाला केवल इतना ही कहकर रह जाता है कि ऐसा तो नहीं है व ऐसा तो नहीं ही है।

तीन आयामों को देखने-समझने वाले लोगों को चौथे आयाम की जानकारी किन शब्दों में कराई जाए। इंद्रियातीत अवस्था की अनुभूति इंद्रियों के माध्यम से कैसे समझाई जाए। समझाने की कोशिश करें तो कोई समझे भी कैसे। अत: हर समझदार आदमी के लिए इन अनुभवों की चर्चा करते हुए नकारने के सिवाय कोई चारा नहीं रहता। ऐसा परम सत्य कभी शब्द सत्य बन ही नहीं सकता।

इंद्रियातीत अनुभूति प्राप्त करने में शब्द असमर्थ है। इंद्रियजनित अनुभूतियों को शब्दों में समुचित रूप से नहीं ढाला जा सकता है। सूक्ष्मतर आंतरिक अनुभूतियाँ अधिकतर गूँगे का गुड़ ही बनी रह जाती हैं। उन्हें व्यक्त करने के सभी प्रयत्न अधूरे रहते हैं। भाषा की सीमाओं के अतिरिक्त बोलने व लिखने वालों की और उससे भी अधिक सुनने व पढ़ने वालों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं, जो कि शब्द सत्य के पूर्ण सत्य बनने में बाधक होती हैं।

कहने वाला जो कहना चाहता है, उसे ठीक-ठाक कह न सके और जो कहे वह जिस अर्थ में कहा गया है, सुनने वाला उस अर्थ में समझ न सके—यही शब्द की अपूर्णता है, फिर भी अनुभूतिजन्य सत्य को शब्दों में उतारने के प्रयत्न होते ही हैं। कुछ अंशों में उनका लाभ हुआ है और कुछ अंशों में हानि भी। जहाँ उन्हें खुले दिमाग में अपनाया गया, वहाँ लाभ हुआ, परंतु जहाँ उन्हें पूर्ण सत्य मानने की हठधर्मिता हुई, वहाँ सांप्रदायिक अंधविश्वास और अंधमान्यताओं को बढ़ावा मिला।

सत्य अनुसंधान के क्षेत्र में मानव की प्रगति रुकी, परंतु आखिर मानव तो मनुपुत्र है। मन से उपजा है। मनन-चिंतन करके ही किसी सत्य को स्वीकारना उसका जन्मजात सहज स्वभाव है। उसके चिंतन-मनन की प्रतिभा को कुंठित कर उसे जड़भरत बनाए रखने के हजार प्रयत्नों के बावजूद मानव समाज का एक प्रबुद्ध वर्ग शब्द सत्य को जाँचने-परखने, बुद्धि के तराजू पर तौलने, तर्क की कसौटी पर कसने और युक्तियों के हथौड़े की चोट लगाने का काम करता ही रहा है।

इसी से सत्य का एक दूसरा स्वरूप उजागर हुआ, जिसे अनुमान सत्य या बौद्धिक सत्य कहा गया है। हर सच्चाई को बुद्धि की भट्ठी में तपाया जाना चाहिए। उसकी जाँच में दिमाग लगाया जाना चाहिए। युक्तियुक्त और तर्कसंगत लगे तो ही स्वीकारना चाहिए। इसी नीति के कारण सत्य के अनुसंधान के क्षेत्र में मानव की प्रगति आरंभ हुई।

इस कारण अंधविश्वासों, अंधमान्यताओं और दकियानूसी सांप्रदायिक ताकतों को गहरी चोटें लगीं। इससे मानवीय विकास का रास्ता खुला। अंधश्रद्धा और भक्तिभावेश के घुटन भरे माहौल और शब्द सत्य को संपूर्ण सत्य मानने के दुराग्रह भरे घने कुहरे से बाहर निकलने में सफलता मिली। किसी बात को आँख मूँदकर मान लेने की आदत छूटी। ऐसा क्यों ? कैसे ? यह जानने की उत्सुकता बढ़ी।

जिस प्रकार सत्य शब्द की मान्यता अधिकतर अंधविश्वासों से दूषित हो उठी है—उसी प्रकार अनुमान यानी बौद्धिक सत्य की मान्यता भी बहुधा शुष्क तर्क-वितर्क के घने जंगल में ही भटककर रह गई है। वैसे भी इन दोनों से यानी शब्द और अनुमान से सत्य का आभास ही हो सकता है, अनुभूति नहीं। सत्याभास यानी धर्माभास और जहाँ धर्माभास होता है, वहाँ धर्म के नाम पर भ्रांति फैलाने की ही आशंका रहती है।

सत्य की अनुभूति ही धर्म की सही अनुभूति है। अत: इन दोनों के आगे की कल्याणकारी मंजिल प्रत्यक्ष सत्य की मंजिल है। प्रत्यक्ष सत्य यानी स्वानुभूतियों के स्तर पर प्रकट हुआ सत्य। आध्यात्मिक सत्य के सूक्ष्म आभ्यांतरिक अनुसंधान की यही सही यात्रा है। यही धर्म की गहरी एवं वास्तविक खोज है। इन प्रत्यक्ष अनुभूतियों द्वारा जितना सत्यांश प्रकट होता है, मानव उतना ही धर्मपथ पर आगे बढ़ता है, परंतु अनुभूतियों के स्तर पर सत्य धर्म का स्वयं अन्वेषण कर उसे स्वीकारना कठिन कार्य है; जबकि अंधविश्वासों के स्तर पर किसी पराये कथन को स्वीकार लेना सरल है।

इसीलिए मानव जाति के लंबे इतिहास में अधिकतर शब्द सत्य के आधार पर अंधविश्वासी संप्रदाय ही पनपे। कुछ ही लोगों ने अंधविश्वास को ठुकराकर सत्यान्वेषण किया, परंतु वे भी बहुधा अनुभूति के क्षेत्र में शून्य रह जाने के कारण बौद्धिक मत-मतांतरों वाले संप्रदायों के प्रणेता अथवा अनुयायी ही होकर रह गए। जहाँ आंतरिक अनुभूति होती है, वहाँ सांप्रदायिक भेदभाव के लिए गुंजाइश कम रहती है अन्यथा शब्दों और बौद्धिक तर्क-वितर्कों की भिन्नता विभिन्न संप्रदायों का पोषण करती है।

आंतरिक अनुभूतियाँ भी निष्पक्ष सत्यशोधन हेतु हों तो ही शुद्ध धर्म को बल देती हैं और यदि ये पूर्वाग्रहपूर्ण हों तो ये भी मत-मतांतरों को बढ़ावा देंगी। सत्य तो केवल वही है, जो समाधि में अनुभूत होता है। सत्य वही है, जिसका अस्तित्व सदा बना रहता है; इसीलिए सत्य को स्वयं परमात्मा कहा जाता है। इसे व्याख्या से नहीं, बल्कि अनुभूति से ही जाना जा सकता है। इसी अनुभूतिजन्य सत्य की प्रतिष्ठा ही धर्म का ध्येय है। ❑

**एक बार ज्येष्ठ महीने की तपती दोपहरी में ईश्वरचंद्र विद्यासागर को बंगाल के कालना गाँव में किसी आवश्यक कार्य से जाना पड़ा। वे अभी कुछ ही दूर चले थे कि एक गरीब आदमी रास्ते में हाँफता व कराहता दिखाई दिया। सभी लोग उसे देखकर निकल जा रहे थे, कोई उसकी सहायता नहीं कर रहा था।**

**ईश्वरचंद्र विद्यासागर को यद्यपि आवश्यक कार्य से जाना था तथापि उस व्यक्ति को देखकर उनकी करुणा उमड़ पड़ी। उन्होंने उसे पानी पिलाया, सांत्वना दी और कंधे पर लादकर अस्पताल ले जाकर भरती करवाया। वहाँ ले जाकर उसकी सेवा-शुश्रूषा में हाथ बँटाया। जब वह थोड़ा अच्छा हो गया, तब उसे कुछ रुपये देकर वे अपने कार्य हेतु रवाना हुए। अपनी इसी उदार आत्मीयता के कारण ईश्वरचंद्र विद्यासागर आज तक सर्वप्रसिद्ध हैं।**

# परमपूज्य गुरुदेव का अद्वैतवादी चिंतन

अद्वैत दर्शन भारतीय जीवन की सनातन आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित वह शिखर है, जहाँ से प्रस्फुटित ज्ञानप्रभा ने समूचे विश्व को मानवीय अस्तित्व की सर्वोत्कृष्ट संभावनाओं का बोध कराया है। इसकी नींव विश्व के प्राचीनतम शास्त्र वेदों में और इसका कलेवर उपनिषदों में विद्यमान है। यहीं से सर्वप्रथम अद्वैत की ज्ञानधारा निस्सृत हुई है। अद्वैत वेदांत के रूपतत्त्व चिंतन का यह सिद्धांत भारतभूमि के अध्यात्मवादी मूल्यों का केंद्र और सर्वोच्च आदर्श रहा है।

इसकी विशिष्टता यह है कि अद्वैत वेदांत कोई बौद्धिक-तार्किक धारणा न होकर मानवीय आत्मा की चैतन्यभूमि पर अपरोक्षानुभूति से प्राप्त तत्त्व है। इसमें मानव मन की तर्कणा और हृदय की श्रद्धा का अनुपम संयोग है, इसलिए यह चिंतन पुरातन-प्राचीन होने के साथ-साथ अतीत के प्रत्येक युग-युगांतर में सर्वदा चैतन्यप्रदाता और नित्य नूतन है। आज भी संपूर्ण विश्व समुदाय की चिंतनशील मानवता इसकी श्रोता है।

भारतभूमि पर आदिकाल से लेकर आज तक अनुभूतिप्रसूत ज्ञान की इस अद्वैत चिंतनधारा की पोषक, उद्घोषक और प्रसारक दिव्य ऋषि-आत्माएँ जन्म लेती रही हैं। कालखंड के प्रत्येक अंतराल में महापुरुषों ने इस धरा को अद्वैत तत्त्व का संदेश देकर उपकृत किया है। अद्वैत वेदांत की उज्ज्वल ज्ञानधारा को विश्वमानवता के कल्याण हेतु अनवरत बनाए रखने वाली तप:पूत आत्माओं द्वारा प्रत्येक युग में महान पुरुषार्थ संपन्न किया गया है।

वेद-उपनिषद् के ऋषियों-मुनियों से लेकर भगवान बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य और आधुनिक युग में स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महर्षि रमण, श्रीअरविंद एवं परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी तक यह प्रवाह अनवरत नितनूतनता और सामयिकता के साथ चला आ रहा है।

अद्वैत वेदांत की इस सुदीर्घ परंपरा में अध्येताओं को देश-काल-परिस्थितियों के सापेक्ष अद्वैत तत्त्व की प्राप्ति के साधनों एवं सैद्धांतिक निरूपण में अंतर अवश्य दिखाई पड़ सकता है, परंतु मूल तत्त्व अद्वैत की सत्ता, स्वीकार्यता और स्वरूप में कहीं कोई अंतर नहीं है। परमसत्ता के रूप में अद्वैत तत्त्व की प्रतिष्ठा सभी कालों के वेदांतिक चिंतन में यथावत् है। परमपूज्य गुरुदेव का समग्र आध्यात्मिक चिंतन भी इसी अद्वैत तत्त्व की धुरी पर खड़ा है।

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद, श्रीअरविंद, महर्षि रमण की भाँति परमपूज्य गुरुदेव भी अद्वैत वेदांत के प्रखर प्रतिनिधि वेत्ता और उद्घोषक हैं। उनका संपूर्ण जीवनदर्शन वैदिक ऋषि-परंपराओं और औपनिषदिक अवधारणाओं का जीवंत और साकार रूप बनकर इक्कीसवीं सदी के समक्ष प्रकट हुआ है। अद्वैत वेदांत जैसे चिंतन के सर्वोच्च शिखर को नए युग के सामने रखने के लिए जिस उच्चकोटि के व्यक्तित्व की आधारभूमि आवश्यक है; वे सभी विशिष्टताएँ आचार्य जी के जीवन में समाविष्ट हुई हैं।

तपस्वी जीवन, प्रखर चिंतन की अलौकिक प्रतिभा, असाधारण तर्कपटुता-विद्वत्ता, ऋषित्वपूरित आध्यात्मिकता, विवेक-वैराग्य की कसौटी पर कसी हुई जीवनचर्या, विश्वमानवता के कल्याण अर्थात लोकसंग्रहार्थ निष्काम कर्म भावना, कवित्व शक्ति, सूक्ष्म दार्शनिक दृष्टि, पवित्रता और कर्त्तव्यनिष्ठा से युक्त निरंतर कल्याणकारी कर्मों में प्रवृत्ति गुरुदेव के विराट व्यक्तित्व को वह स्वरूप प्रदान करती है, जिसे युगपुरुष, युगप्रणेता, युगऋषि जैसी उपमाएँ सार्थकता प्राप्त करती हैं।

यद्यपि परमपूज्य गुरुदेव अद्वैत वेदांत की अद्यतन परंपराओं में किसी गुरु-शिष्य, मत-पंथ जैसी पृष्ठभूमि को धारण नहीं करते हैं, परंतु उनके तात्त्विक और आध्यात्मिक चिंतन की सूक्ष्मता और व्यापकता उन्हें अद्वैतवाद की महान विरासत का प्रखर-मुखर स्वर बनाकर आधुनिक विश्व के समक्ष सहज ही खड़ा कर देती है। उनका दर्शन वेदांत की इस मान्यता का शत-प्रतिशत समर्थन करता है कि इस ब्रह्मांड का और मनुष्य का तात्त्विक स्वरूप पूर्णतया आध्यात्मिक है, अद्वैत है। सर्वत्र के सार में एक ही परम तत्त्व विद्यमान है,

जिसे शास्त्रों में ब्रह्म कहा जाता है। इसकी प्राप्ति ही यथार्थ में मनुष्य का लक्ष्य है।

इस सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के विविध पथ हो सकते हैं। अद्वैत वेदांत के सैद्धांतिक आधार में ये ही तीन बातें मुख्य हैं। वेदांत चिंतन की इसी संकल्पना ने भारतीय जीवन को निरंतर प्रेरणा तथा जीवन के उत्कृष्टतम मूल्यों के लिए सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान किया है। परमपूज्य गुरुदेव का चिंतन भी इसी संकल्पना को आत्मसात् करते हुए वेदांतिक परंपरा में सर्वथा एक नया मार्ग, नूतन दृष्टि लिए प्रस्तुत होता है तथा इस प्राचीन आदर्श चिंतन को नई शक्ति देने का कार्य करता है।

परमपूज्य गुरुदेव के अद्वैतवादी चिंतन को समझने के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावलियों से परिचित होना आवश्यक है। जिस प्रकार वेदांत में ब्रह्मतत्त्व और उसकी माया शक्ति है, उसी प्रकार गुरुदेव के चिंतन में गायत्री तत्त्व और उसकी ब्राह्मी शक्ति है। जिस प्रकार ब्रह्म का उपास्य रूप ईश्वर को कहा गया है, उसी प्रकार गायत्री का उपास्य तत्त्व 'सविता' है, जिसे कहीं-कहीं पर उन्होंने अपने ग्रंथों में विश्व ब्रह्मांड का 'प्राणमय कोश' भी कहा है।

वेदांतिक आत्मा का स्वरूप और आचार्यश्री की चैतन्य तत्त्वशक्ति सविता, दोनों में एक तत्त्व का प्राकट्य है। पंचभूतात्मक सृष्टि संरचना के विज्ञान और प्रकृति तत्त्व को गुरुदेव के द्वारा प्रतिपादित सावित्री तत्त्व विवेचना में सहज प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह अद्वैत वेदांत के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों का गुरुदेव के दर्शन में सुसंगत व विस्तृत स्वरूप मौजूद है।

परमपूज्य गुरुदेव के चिंतन में अद्वैत वेदांत के आधारभूत विचारों का समावेश तो है, लेकिन कुछ ऐसे विशिष्ट और नूतन पहलू भी हैं, जो पूज्य गुरुदेव को अन्य पूर्ववर्ती वेदांतिक विचारकों से अलग एक नई पहचान और मौलिकता प्रदान करते हैं। उनकी इस नवीनता एवं मौलिकता हेतु अद्वैत वेदांत का यह सर्वप्रसिद्ध मंत्र है कि **'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः'** अर्थात एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता है, जगत का कोई अस्तित्व नहीं, यह माया या भ्रम मात्र है तथा जीवात्मा एवं ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।

आचार्य शंकर से लेकर अनेक परवर्ती विचारकों में इस सिद्धांत पर 'जगत् मिथ्या' को लेकर पर्याप्त मतभेद रहा है। यही मतभेद पूज्य गुरुदेव के चिंतन में भी दिखाई देता है। उनके अनुसार जगत् मिथ्या अथवा भ्रम नहीं, वरन परब्रह्म की **'एकोऽहं बहु स्याम्'** की स्फुरणा और संकल्पशक्ति का परिणाम है, अतः यह मिथ्या न होकर वास्तविक है।

इसके साथ ही जगत् के संबंध में दूसरा विचार यह है कि जगत् ब्रह्म की लीला है। परमपूज्य गुरुदेव लीला का समर्थन तो करते हैं, परंतु इसके साथ यह भी स्पष्ट करते हैं कि यह ब्रह्म की सृष्टिरूपी लीला का प्रयोजन है। सत्, चित् और आनंदस्वरूप ब्रह्म के साधन में यह जगत् अनिवार्य माध्यम बनता है। जगत् की सत्ता ब्रह्म से अलग नहीं, अपितु ब्रह्ममय ही है और ब्रह्म की तरह ही यह भी वास्तविक है।

परमपूज्य गुरुदेव ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा और सृष्टि के संबंध में अद्वैतवादी चिंतन का आधार उपनिषदों में वर्णित परा-अपरा प्रकृति को बनाते हैं एवं इसके साथ ब्रह्म के एकत्व की तार्किक विवेचना करते हैं। उनके चिंतन में ब्रह्म की परमसत्ता सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान है। यह साकार और निराकार दोनों रूपों में है।

जड़ और चेतन दोनों ब्रह्म की ही दो शक्तिधाराएँ हैं, जो सृष्टि में सर्वत्र विद्यमान हैं और जैसे विद्युत शक्ति के धनात्मक और ऋणात्मक भाग के संयोग से क्रियाशीलता देखी जाती है, उसी तरह सृष्टि में जड़ और चेतन दोनों परस्पर पूरक बनकर ब्रह्म संकल्प से जुड़े हैं। ब्रह्म और उसकी शक्ति, जिसे माया, प्रकृति, ब्राह्मी जैसे कई नाम दिए गए हैं; ये अभिन्न हैं। अतः परम तत्त्व का मूलस्वरूप एक ही है—अद्वैत।

यहाँ परमपूज्य गुरुदेव के अद्वैतवादी चिंतन के संदर्भ में यह मौलिकता ध्यान रखने योग्य है कि वे आचार्य शंकर की भाँति ब्रह्म विवर्तवाद का समर्थन नहीं करते, अपितु स्वामी विवेकानंद, महर्षि रमण, श्रीअरविंद की तरह ब्रह्म परिणामवाद के पोषक हैं। माया उनके चिंतन में यथार्थ शक्ति है। मिथ्या शब्द का तात्पर्य भ्रम या संशय से नहीं लिया जा सकता। ब्रह्म की शक्ति माया और सर्जना सृष्टि को मिथ्या नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसकी वास्तविक उपस्थिति है। माया भ्रम नहीं, अपितु अविद्या व अज्ञान है।

आचार्य शंकर अद्वैत को स्थापित करने के लिए जिन तर्कों की सहायता लेते हैं वे ये हैं कि सत् वही है, जो तीनों कालों में एक-सा रहे और अपरिवर्तनशील हो। जगत् परिवर्तनशील है, अतः यह सत् नहीं है। दूसरी बात यह कि असत् वह है, जिसकी कोई सत्ता या अस्तित्व ही नहीं है,

जैसे—आकाश कुसुम, परंतु जगत् असत् भी नहीं है; क्योंकि हम जीवन व्यापार में इसकी वास्तविक अनुभूति प्राप्त करते हैं। अत: जो न सत् है और न असत्, वही मिथ्या है।

मिथ्या शब्द की सैद्धांतिक स्थापना के लिए आचार्य शंकर ने सत्ता के तीन दृष्टिस्तरों का उल्लेख किया है—पारमार्थिक, व्यावहारिक एवं आभासिक। पारमार्थिक रूप से एकमात्र ब्रह्म है, दूसरा कोई नहीं। व्यावहारिक रूप से ईश्वर, जीव, आत्मा, जगत् सभी का अस्तित्व है। यह सत्य है, परंतु पारमार्थिक रूप से ये सब मिथ्या हैं और आभासिक रूप में वे चीजें हैं, जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं है।

परमपूज्य गुरुदेव शंकराचार्य के अद्वैतवादी चिंतन से अलग ब्रह्म को परम चैतन्य सत्ता मानकर उसकी चैतन्य शक्ति के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत कर अपना अद्वैत सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। परमपूज्य गुरुदेव के मत में स्वरूप की दृष्टि से सत्-चित्-आनंद रूप ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता है। अद्वैत, निराकार ब्रह्म का सच्चिदानंद रूप उसकी स्वरूप शक्ति है। आत्मा एवं जीवशक्ति उसकी तटस्थ शक्ति है। माया या प्रकृति उसकी क्रियाशक्ति है।

इस तरह परमपूज्य गुरुदेव के अद्वैत चिंतन में मिथ्या शब्द शक्ति में अपना अस्तित्व खो देता है। ब्रह्मप्राप्ति अथवा ब्रह्मज्ञान के लिए भी साधन रूप में वे ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों को स्वीकार करते हैं। इस तरह परमपूज्य गुरुदेव के अद्वैतवादी चिंतन में मौलिकता और नवीनता के साथ एक समन्वयकारी दृष्टि भी मौजूद है।

सत्ता विवेचन में वे आचार्य शंकर, स्वामी विवेकानंद, श्रीअरविंद की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं और साधन विवेचन में आचार्य रामानुज, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, महर्षि रमण की भावना को प्रखर प्रज्ञास्वरूप उनका तत्त्वदर्शन वेदांतिक अद्वैत के प्रकाश की लौ को और अधिक जाज्वल्य और दीप्तियुक्त करता है तथा सजल श्रद्धा के रूप में तत्त्व की प्राप्ति के मार्ग को सहज सुलभ साधनों के रूप में अत्यंत शीतल और सुगम बनाकर प्रस्तुत करता है। विद्वानों द्वारा अद्वैत वेदांत के प्राचीन चिंतकों में जिस तर्क और श्रद्धा का सार्थक संयोग देखा गया है, वही संयोग परमपूज्य गुरुदेव के प्रखर प्रज्ञा और सजल श्रद्धारूपी प्रतीक चिंतन में समाहित है। ❑

**महात्मा रामलाल के सत्संग से प्रेरित होकर एक व्यापारी ने अपने व्यापार में ईमानदारी बरतने का संकल्प लिया। इस तरह कुछ ही वर्षों में उसे करोड़ों रुपयों का लाभ हो गया। एक दिन व्यापारी एक लाख रुपये लेकर महात्मा जी को देने पहुँचा। महात्मा जी रुपयों को देखकर बोले—"भैया! तुम्हारे-मेरे संबंध सांसारिक नहीं, पारमार्थिक थे। मैंने तुम्हें व्यापार में ईमानदारी बरतने का उपदेश इस लोक में धन कमाने के उद्देश्य से नहीं दिया था। मैंने तुम्हें ईमानदारी की प्रेरणा मानव जीवन को सफल करने और परलोक में अच्छा स्थान प्राप्त करने के उद्देश्य से दी थी। मैं तुम्हारा धन लेकर क्या करूँगा? इसे वापस ले जाओ। किसी अनाथ या बीमार की सेवा-सहायता में इस धन का उपयोग करना।" धनिक सज्जन संत की बात सुनकर उनकी विरक्ति के प्रति नतमस्तक होकर चला गया।**

# अकारण विरोध एवं विद्वेष से निपटने का राजमार्ग

इस समाज संसार में रहते हुए दूसरों से मतभेद स्वाभाविक हैं और यदि ये बढ़ जाएँ तो बात कलह-कलेश भरी कटुता तक आ पहुँचती है। मानवीय मन की प्रकृति, अहंकार के स्वरूप और लोकचलन के सम्मिलित प्रभाव के चलते यह कब दैनिक जीवन का हिस्सा बन जाए, घर-घर एवं समाज की कहानी बन जाए, पता नहीं चलता, लेकिन व्यक्ति से लेकर परिवार एवं समाज की सुख-शांति के लिए तथा सर्वतोमुखी विकास की दृष्टि से यह स्थिति वांछनीय नहीं है। सामूहिक उत्कर्ष के लिए आपसी तालमेल, सामंजस्य एवं न्यूनतम उदारता-सहिष्णुता की आवश्यकता रहती है।

आपसी मतभेद एवं भ्रम-संशय प्राय: बिना किसी ठोस आधार के भी पनप जाते हैं, जिसमें गलतफहमी प्रमुख कारण रहती है। इसका प्रधान आधार रहता है आपसी संवादहीनता। ऐसी स्थिति में मन में पनपा संशय-भ्रम का छोटा-सा बीज समय के साथ अंकुरित एवं पुष्पित-पल्लवित होकर विकराल रूप धारण करता जाता है। इसका सरल समाधान रहता है आपसी संवाद, जिसके आधार पर आपसी संशय, भ्रम का कुहासा आसानी से छँट जाता है। हाँ! इसके लिए दोनों ओर से न्यूनतम सहयोग की अपेक्षा रहती है। यदि एक पक्ष अड़ियल रवैया अपनाए रहे, अपनी दुर्बलता या कमी को स्वीकार करने का साहस एवं सद्भाव नहीं जुटा पाए, तो फिर मतभेद जस-के-तस बने रहते हैं, लेकिन समाधान तो अंतत: आपसी संवाद के आधार पर ही सुनिश्चित होता है।

दूसरा, जब आपसी मतभेद का कारण ईर्ष्या-द्वेष, दुर्भाव एवं नकारात्मक चिंतन हों, तो स्थिति और भी कठिन हो जाती है—जिसमें मुख्य कारण परस्पर तुलना एवं प्रतिद्वंद्विता का भाव रहता है। प्रतिद्वंद्विता में कोई बुराई नहीं है, यदि यह स्वस्थ है। किसी को आगे बढ़ते देख यदि आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है, तो यह वांछित है। मानवीय प्रगति का इतिहास इसी तरह की प्रेरणा एवं स्वस्थ प्रतिस्पर्धा पर आधारित रहा है, जहाँ विभिन्न सभ्यताएँ एवं संस्कृतियाँ एकदूसरे के प्रगतिशील एवं विकसित स्वरूप से सीखती रहीं—फलस्वरूप आवश्यक आदान-प्रदान होता रहा तथा मानवीय समाज आज की विकसित स्थिति में आ पहुँचा।

मतभेद एवं ईर्ष्या-द्वेष का एक कारण व्यक्ति की आंतरिक कुंठा भी रहती है, जिसके कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व हीनता के गहरे भाव से क्लांत होता है। ऐसे में वह दूसरों से प्रेरणा लेने के बजाय, उनकी निंदा, आलोचना, छिद्रान्वेषण कर झूठी संतुष्टि को पाने का प्रयास करता है। इसमें किसी भी तरह से आगे बढ़ रहे व्यक्ति को छोटा व नीचा दिखाने की कुचेष्टा काम कर रही होती है और उसके सकारात्मक पहलुओं की ओर से आँखें बंद रहती हैं।

इसमें सत्य का आधार अत्यल्प रहता है, छोटी- सी बात को इसमें नमक-मिर्च लगाकर प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही संवादहीनता की स्थिति में व्यक्ति अंदर- ही-अंदर कुढ़ रहा होता है और आगे बढ़ रहे व्यक्ति के प्रति मन:स्थिति क्रमश: विस्फोटक आक्रोश, द्वेष एवं ईर्ष्या का स्वरूप ले रही होती है। ऐसी स्थिति में आपसी संवाद एवं शांति-समाधान की संभावनाएँ न्यून रहती हैं।

यदि कोई इस आधार पर आपकी आलोचना, निंदा करता है, दुष्प्रचार करता है या कीचड़ उछालता है, तो फिर इससे प्रभावित होने व इस आधार पर अपना मूल्यांकन करने व बुरा मानने जैसी कोई बात नहीं रहती। एक बार ऐसी निराधार बातों एवं झूठे आरोपों को सुनकर विचलित होना स्वाभाविक है, लेकिन यदि हम अपने सत्य के प्रति सजग एवं अडिग हैं व आवश्यक सुधार के लिए तैयार हैं, तो फिर ये आरोप हमारे लिए चित्त-शुद्धि एवं आत्मपरिष्कार के सुअवसर बन जाते हैं और ये हमें जीवन के प्रति और स्पष्ट तत्त्वदृष्टि का वरदान देकर जाते हैं।

ऐसे में प्रतिपक्षी को उसी की भाषा में जवाब देने का अर्थ हुआ कि हम भी उसी के स्तर तक गिर रहे हैं। यदि वह कीचड़ उछाल रहा है तो हम भी कीचड़ उछाल कर उसका जवाब दे रहे हैं। इस कीचड़ की होली में दोनों पक्ष के चेहरे बदरंग होने सुनिश्चित हैं, लेकिन समाधान

# अकारण विरोध एवं विद्वेष से निपटने का राजमार्ग

इस समाज संसार में रहते हुए दूसरों से मतभेद स्वाभाविक हैं और यदि ये बढ़ जाएँ तो बात कलह-कलेश भरी कटुता तक आ पहुँचती है। मानवीय मन की प्रकृति, अहंकार के स्वरूप और लोकचलन के सम्मिलित प्रभाव के चलते यह कब दैनिक जीवन का हिस्सा बन जाए, घर-घर एवं समाज की कहानी बन जाए, पता नहीं चलता, लेकिन व्यक्ति से लेकर परिवार एवं समाज की सुख-शांति के लिए तथा सर्वतोमुखी विकास की दृष्टि से यह स्थिति वांछनीय नहीं है। सामूहिक उत्कर्ष के लिए आपसी तालमेल, सामंजस्य एवं न्यूनतम उदारता-सहिष्णुता की आवश्यकता रहती है।

आपसी मतभेद एवं भ्रम-संशय प्राय: बिना किसी ठोस आधार के भी पनप जाते हैं, जिसमें गलतफहमी प्रमुख कारण रहती है। इसका प्रधान आधार रहता है आपसी संवादहीनता। ऐसी स्थिति में मन में पनपा संशय-भ्रम का छोटा-सा बीज समय के साथ अंकुरित एवं पुष्पित-पल्लवित होकर विकराल रूप धारण करता जाता है। इसका सरल समाधान रहता है आपसी संवाद, जिसके आधार पर आपसी संशय, भ्रम का कुहासा आसानी से छँट जाता है। हाँ! इसके लिए दोनों ओर से न्यूनतम सहयोग की अपेक्षा रहती है। यदि एक पक्ष अड़ियल रवैया अपनाए रहे, अपनी दुर्बलता या कमी को स्वीकार करने का साहस एवं सद्भाव नहीं जुटा पाए, तो फिर मतभेद जस-के-तस बने रहते हैं, लेकिन समाधान तो अंतत: आपसी संवाद के आधार पर ही सुनिश्चित होता है।

दूसरा, जब आपसी मतभेद का कारण ईर्ष्या-द्वेष, दुर्भाव एवं नकारात्मक चिंतन हों, तो स्थिति और भी कठिन हो जाती है—जिसमें मुख्य कारण परस्पर तुलना एवं प्रतिद्वंद्विता का भाव रहता है। प्रतिद्वंद्विता में कोई बुराई नहीं है, यदि यह स्वस्थ है। किसी को आगे बढ़ते देख यदि आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है, तो यह वांछित है। मानवीय प्रगति का इतिहास इसी तरह की प्रेरणा एवं स्वस्थ प्रतिस्पर्धा पर आधारित रहा है, जहाँ विभिन्न सभ्यताएँ एवं संस्कृतियाँ एकदूसरे के प्रगतिशील एवं विकसित स्वरूप से सीखती रहीं—फलस्वरूप आवश्यक आदान-प्रदान होता रहा तथा मानवीय समाज आज की विकसित स्थिति में आ पहुँचा।

मतभेद एवं ईर्ष्या-द्वेष का एक कारण व्यक्ति की आंतरिक कुंठा भी रहती है, जिसके कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व हीनता के गहरे भाव से क्लांत होता है। ऐसे में वह दूसरों से प्रेरणा लेने के बजाय, उनकी निंदा, आलोचना, छिद्रान्वेषण कर झूठी संतुष्टि को पाने का प्रयास करता है। इसमें किसी भी तरह से आगे बढ़ रहे व्यक्ति को छोटा व नीचा दिखाने की कुचेष्टा काम कर रही होती है और उसके सकारात्मक पहलुओं की ओर से आँखें बंद रहती हैं।

इसमें सत्य का आधार अत्यल्प रहता है, छोटी- सी बात को इसमें नमक-मिर्च लगाकर प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही संवादहीनता की स्थिति में व्यक्ति अंदर- ही-अंदर कुढ़ रहा होता है और आगे बढ़ रहे व्यक्ति के प्रति मन:स्थिति क्रमश: विस्फोटक आक्रोश, द्वेष एवं ईर्ष्या का स्वरूप ले रही होती है। ऐसी स्थिति में आपसी संवाद एवं शांति-समाधान की संभावनाएँ न्यून रहती हैं।

यदि कोई इस आधार पर आपकी आलोचना, निंदा करता है, दुष्प्रचार करता है या कीचड़ उछालता है, तो फिर इससे प्रभावित होने व इस आधार पर अपना मूल्यांकन करने व बुरा मानने जैसी कोई बात नहीं रहती। एक बार ऐसी निराधार बातों एवं झूठे आरोपों को सुनकर विचलित होना स्वाभाविक है, लेकिन यदि हम अपने सत्य के प्रति सजग एवं अडिग हैं व आवश्यक सुधार के लिए तैयार हैं, तो फिर ये आरोप हमारे लिए चित्त-शुद्धि एवं आत्मपरिष्कार के सुअवसर बन जाते हैं और ये हमें जीवन के प्रति और स्पष्ट तत्त्वदृष्टि का वरदान देकर जाते हैं।

ऐसे में प्रतिपक्षी को उसी की भाषा में जवाब देने का अर्थ हुआ कि हम भी उसी के स्तर तक गिर रहे हैं। यदि वह कीचड़ उछाल रहा है तो हम भी कीचड़ उछाल कर उसका जवाब दे रहे हैं। इस कीचड़ की होली में दोनों पक्ष के चेहरे बदरंग होने सुनिश्चित हैं, लेकिन समाधान

की दृष्टि से हाथ में कुछ भी लगने वाला नहीं, बल्कि तमाशा देखने वालों के लिए दोनों पक्ष मनोरंजन का माध्यम अवश्य बन जाते हैं।

ऐसी स्थिति में आवश्यकता दूसरे के आरोपों, निंदा, अपमान, कटु वचन आदि के मर्म को समझने की है, इसमें निहित सार तत्त्व को ग्रहण करते हुए, यदि कुछ सत्य है तो उसको हृदयंगम करते हुए अपने किले को सशक्त एवं अभेद्य करने की है। ऐसे में व्यक्ति को संयम, स्वाध्याय, साधना एवं सेवा के मानदंडों पर कसते हुए, उपासना-साधना एवं आराधना की त्रिवेणी में स्नान करते हुए अपने अस्तित्व की जड़ों को और सुदृढ़ किया जा सकता है।

ऐसे में प्रतिपक्षी का अनावश्यक क्रोध, आक्रोश एवं दुर्भाव उसी तक सीमित रहते हैं और अपनी शांति, स्थिरता एवं धैर्य अपनी मुट्ठी में रहते हैं। यदि प्रतिपक्षी थोड़ा भी समझदार व संवेदनशील होगा तो अपने आवेश, आवेग एवं क्रोध के शांत होने पर अपनी गलती का एहसास अवश्य करेगा व अपने आचरण में वांछित सुधार करेगा और यदि उसके असुरक्षा, दुर्बलता, संशय, नकारात्मकता, अहं व स्वार्थ के भाव गहरे हैं, तो इसमें अधिक समय लग सकता है। ऐसे नासमझ, भ्रमित, नकारात्मक, भय-आशंका और अज्ञानता से ग्रसित व्यक्ति से उलझने में कोई लाभ नहीं। अपने स्तर को उसके स्तर तक गिराने में कोई समझदारी नहीं। यह हर दृष्टि से घाटे का ही सौदा रहता है।

ऐसे में महर्षि पतंजलि की मानें तो ऐसे व्यक्ति के प्रति उपेक्षा व मौन का भाव ही उचित रहता है। ऐसा करने पर हम आरोप-प्रत्यारोप के कुचक्र से बच जाते हैं और अपने मन की शांति, स्थिरता एवं प्रसन्नता भी अपनी मुट्ठी में रहती हैं। इस तरह नकारात्मक मन:स्थिति से आक्रांत व्यक्ति को उसके हाल पर छोड़ना ही उचित रहता है। ईश्वरीय विधान पर आस्था हमें अपने श्रेष्ठ कर्मों पर केंद्रित होने की समझ व शक्ति देती है।

अत: अकारण विरोध एवं विद्वेष होने पर हम इनमें उलझने के बजाय अपने शुभ कर्मों पर ध्यान दें। अपने कर्त्तव्य कर्मों पर केंद्रित रहें, अपने पुण्य एवं तप के कोश में वृद्धि करते रहें। समाज एवं लोकहित में जो भी कुछ बन पड़ रहा हो, उसमें संलग्न रहें। विराट लक्ष्य पर केंद्रित यह मन:स्थिति ही अकारण विद्वेष एवं विरोध से निपटने का राजमार्ग है। ❑

**एक बार एक बच्चा अपने पिता के साथ पार्क में घूम रहा था। तभी उस जिज्ञासु बच्चे ने पिता से पूछा—"पिताजी! दुनिया में कौन-सी चीज व्यर्थ है, जिसकी कोई उपयोगिता नहीं है।" पिताजी बोले—"बेटा! संसार में कोई भी चीज व्यर्थ नहीं है। सबका अपना-अपना महत्त्व है।"**

**पार्क में एक जगह पानी भरा था। पिताजी ने उस पानी में डूबते हुए चींटे की ओर इशारा किया और पास ही पड़े तिनके को उठाकर चींटे के पास डाल दिया। सहारा पाते ही चींटा उस पर चढ़ गया और फिर तिनके के साथ बहता हुआ किनारे पर पहुँच गया।**

**पूरा दृश्य बच्चे को दिखाने के बाद पिता बोले—"देखा तुमने, यह छोटा-सा घास का तिनका भी व्यर्थ नहीं है। इसी की वजह से चींटे की जान बच सकी।" सचमुच संसार में भगवान की बनाई हुई कोई वस्तु निरर्थक नहीं है, सबका अपना-अपना उपयोग है, महत्त्व है।**

# रोचक बरफीला संसार

बरफ प्रकृति का विशिष्ट उपहार है, जो सरदी के मौसम में पहाड़ी क्षेत्रों को अपनी सफेद मोटी चादर से ओढ़ लेती है। शायद ही कोई इनसान हो, जो इसका स्वागत न करता हो। यह बात दूसरी है कि लगातार बरफ के चलते या अत्यधिक बरफ के कारण कभी-कभी कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है अन्यथा जीवनयापन के संसाधन उपलब्ध हों तो बरफ से अधिक रोमांचक अनुभव शायद ही कोई दूसरा मिले। बरफ का संसार स्वयं में जितना रोमांचक है, उतना ही कई रोचक रहस्यों को समेटे हुए भी है। इससे जुड़े कुछ रोचक तथ्यों को यहाँ अनावृत किया जा रहा है।

हिमकण तब बनते हैं, जब वायुमंडल में जलवाष्प जमती है। प्रारंभ में इनके छोटे क्रिस्टल स्पष्ट और पारदर्शी दिखाई देते हैं। वायु के बहाव में ये क्रिस्टल हवा में तैरते रहते हैं और एकदूसरे से तब तक चिपके रहते हैं, जब तक कि उनमें संख्या सौ या उससे अधिक न हो जाए। जब हिमकणों के जमे हुए टुकड़ों का आकार काफी बड़ा हो जाता है तो वे धीरे-धीरे आसमान से गिरने लगते हैं। हिमखंडों के इन समूहों को ही हम बरफ कहते हैं।

बरफ के हिमकण का आकार कैसा होगा, यह हवा के तापमान पर निर्भर करता है। शून्य से दो डिगरी सेल्सियस में बरफ जमती है। इससे नीचे 5 डिगरी सेल्सियस होने पर ये हिमकण सपाट क्रिस्टल के रूप में बन जाते हैं। इससे भी निचले तापमान पर ये क्रिस्टल रोएँदार दिखने लगते हैं। हिमकणों (स्नो-फ्लेक्स) के 35 विविध प्रकार पाए गए हैं।

बरफ दिखने में सफेद प्रतीत होती है, लेकिन इसका अपना कोई रंग नहीं होता। बरफ जमे हुए पानी से ज्यादा कुछ नहीं है। बरफ के टुकड़े वास्तव में छोटे क्रिस्टल से बने होते हैं, जिनके आर-पार रोशनी के गुजरने से बरफ के टुकड़े पारदर्शी के बजाय सफेद दिखाई देते हैं। बरफ का रंग प्रदूषण, धुआँ, काई या अन्य तत्त्वों के कारण नारंगी से लेकर काले रंग का हो सकता है। स्विट्जरलैंड में सन् 1969 में क्रिसमस के समय काली बरफ गिरी थी और सन् 1955 में कैलिफोर्निया पर हरी बरफ गिरी थी। अंटार्कटिका और ऊँचे पहाड़ों में बरफ शैवालों के कारण गुलाबी, बैंगनी, लाल और पीले-भूरे रंग की पाई जाती है।

बरफ वातावरण में विद्यमान ध्वनि को सोखती है। इसी कारण बरफ गिरने पर चारों ओर का वातावरण शांत हो जाता है। एक अद्भुत नीरव शांति पूरी प्रकृति एवं परिवेश में जैसे व्याप्त हो जाती है। इसी के साथ हिमकण गिरने की गति 1 किमी प्रतिघंटा से लेकर 14 किमी प्रतिघंटा जितनी तीव्र हो सकती है।

बरफ के कण में कितना पानी सिमटा है और वायु की गति कैसी है, इन आधारों पर हिमकणों की गति तय होती है। इन्हें बादलों से धरती तक पहुँचने में एक घंटे तक का समय लगता है। जहाँ तक बरफ के स्वाद की बात करें तो इसका अपना कोई स्वाद नहीं होता। धरती पर गिरने से इसमें धरती की सौंधी खुशबू समा जाती है। वृक्षों में गिरने पर यह पत्तों का स्वाद व गंध ले लेती है।

हिम एक उत्कृष्ट ऊष्मारोधक है। ज्ञातव्य है कि बरफ में 90 से 95 प्रतिशत तक हवा कैद होती है अर्थात यह गरमी को रोककर रखती है। यही कारण है कि बरफीले क्षेत्रों में रहने वाले जीव-जंतु बरफ के भीतर गहराई में अपना घर बनाकर रहते हैं। ध्रुवों में बरफ की सिल्लियों से बने घर (इग्लू) भी इसी आधार पर तापमान को गरम रखकर यहाँ के निवासियों के रहने लायक आवास बनते हैं।

उत्तरी ध्रुव में रहने वाले एस्किमोज के ये शीतकालीन आवास इग्लू स्नोहट्स को सबसे अधिक ऊर्जा संवर्द्धक भवनों के रूप में माना जाता है। जब बाहर का तापमान माइनस 45 डिगरी सेल्सियस तक गिर जाता है तो इन भवनों का तापमान 15 डिगरी सेल्सियस तक बना रहता है। इनका तापमान बाहर की तुलना में 100 डिगरी अधिक तक हो सकता है।

बरफ से जुड़े कुछ अन्य रोचक तथ्य इस तरह से हैं—वैज्ञानिकों के अनुसार उन्हें अध्ययन के दौरान कभी भी बरफ के दो एक समान टुकड़े नहीं मिले। अब तक पाए गए

बरफ के टुकड़ों में सबसे बड़ा टुकड़ा 38 सेंटीमीटर व्यास का था। न केवल पृथ्वी पर, बल्कि मंगल पर भी बरफ पाई गई है। सन् 1949 में सहारा रेगिस्तान में बरफबारी हुई थी; हालाँकि यह लगभग तुरंत ही पिघल गई थी। फिनलैंड में रहने वाले सैम लोगों की भाषा में बरफ के लिए लगभग 180 शब्द हैं; जबकि एस्किमो भाषा में बरफ के लिए 20 से अधिक शब्द हैं। इसी तरह उत्तरी ध्रुव के आदिवासी इनुइट लोगों ने बरफ के पचास से अधिक नाम रखे हुए हैं।

जब कोई बरफ का टुकड़ा पानी में गिरता है तो उससे एक उच्च आवृत्ति वाली ध्वनि निकलती है, जो मनुष्य द्वारा नहीं पकड़ी जाती है, लेकिन वैज्ञानिकों के अनुसार नदी की मछलियाँ इसे नहीं पसंद करती हैं। सरदियों के मौसम में बरफ पृथ्वी की सतह से सूर्य की नब्बे प्रतिशत किरणों को परावर्तित कर देती है और उन्हें वापस अंतरिक्ष में भेजती है। इस प्रकार सरदियों में बरफ पृथ्वी को गरम होने से रोकती है।

यह भी एक ज्ञात तथ्य है कि पूरे विश्व में बरफ नहीं गिरती है। इस कारण पृथ्वी पर रहने वाली आधी आबादी अपने जीवनकाल में हिमपात नहीं देख पाती। वे कथा-किंवदंतियों, चित्रों या फिल्मों के माध्यम से ही इसका दर्शन कर पाते हैं। हालाँकि आज यातायात की सुविधाओं के चलते यह प्रतिशत कम हो रहा है। बरफ के दर्शनाभिलाषियों के लिए आज कुछ ही घंटों में बरफीले स्थलों के दर्शन संभव हो जाते हैं।

बरफबारी के बीच अत्यधिक समय बिताने पर लोग कई तरह के रोगों के भी शिकार हो सकते हैं। उत्तरी ध्रुवों में लोग प्राय: आर्कटिक हिस्टीरिया नामक बीमारी के शिकार हो जाते हैं। ऐसे में व्यक्तियों की स्मरणशक्ति कम हो जाती है और वे बेमतलब के शब्द बोलने लगते हैं तथा जोखिम भरे काम करने लगते हैं। इसी के साथ बचपन में बरफीले तूफान जैसी किसी दुर्घटना या कटु अनुभव के चलते कई लोग बरफ के भय अर्थात चियोनोफोबिया के शिकार हो सकते हैं। ऐसे लोग बरफ को देखते ही सिहर जाते हैं और थोड़ी-सी बरफबारी में उन्हें ऐसा लगता है कि वे इसमें दबने वाले हैं।

भारत के संदर्भ में बात करें तो इसके लिए बरफ के अनुदान अनगिनत हैं। बरफ से ढका हिमालय जहाँ उत्तरी छोर पर इसके सबल प्रहरी की भाँति खड़ा है तो इसके ग्लेशियरों से पिघलकर बह रही सदाबहार नदियाँ सिंचाई से लेकर आर्थिक व्यवस्था एवं संस्कृति के कालजयी आधार हैं।

आज कितने सारे हिल स्टेशन बरफ के कारण सैलानियों के लिए आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं। दुर्भाग्यवश इन दिनों मौसम-परिवर्तन की मार के कारण अनियमित से लेकर बेमौसमी बरफबारी तथा पिघलते ग्लेशियर चिंता का विषय बन रहे हैं। इनके कारण कई तरह की प्राकृतिक आपदाएँ भी घटित हो रही हैं, लेकिन कुल मिलाकर बरफ के अनुदान अनगिनत हैं।

ऐसे में आवश्यकता व्यापक स्तर पर प्रकृति एवं पर्यावरण के संरक्षण की है, जिससे बरफ का अनुदान प्राकृतिक रूप से हर वर्ष अपने भव्यतम रूप में सबको कृतार्थ करता रहे। विश्व हिमदिवस के रूप में मनाए जाने वाले 19 जनवरी के दिन इस पर विचारमंथन किया जा सकता है तथा जनजागरूकता से लेकर कुछ सार्थक कदमों के साथ इस दिशा में संकल्पित हुआ जा सकता है। ❑


## अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

| Beneficiary – | Akhand Jyoti Sansthan | I.F.S. Code | Account No. |
|---|---|---|---|
| S.B.I. | Ghiya Mandi Mathura | SBIN0031010 | 51034880021 |
| P.N.B. | Chowki Bagh Bahadur, Mathura | PUNB-0183800 | 1838002102224070 |
| I.O.B. | Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura | IOBA0001441 | 144102000000006 |

**विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।**

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

# जैव-विविधता का महत्व

जैव-विविधता (जैविक-विविधता) जीवों के बीच पाई जाने वाली विभिन्नता है, जो कि प्रजातियों में, प्रजातियों के बीच और उनके पारितंत्रों की विविधता को भी समाहित करती है। जैव-विविधता शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्टर जी0 रासन ने सन् 1985 में किया था। जैव-विविधता तीन प्रकार की होती है—(1)आनुवांशिक विविधता, (2) प्रजातीय विविधता तथा (3) पारितंत्र विविधता। प्रजातियों में पाई जाने वाली आनुवांशिक विभिन्नता को आनुवांशिक विविधता के नाम से जाना जाता है। यह आनुवांशिक विविधता जीवों के विभिन्न आवासों में विभिन्न प्रकार के अनुकूलन का परिणाम होती है।

प्रजातियों में पाई जाने वाली विभिन्नता को प्रजातीय विविधता के नाम से जाना जाता है। किसी भी विशेष समुदाय अथवा पारितंत्र (इकोसिस्टम) के उचित कार्य के लिए प्रजातीय विविधता का होना अनिवार्य होता है। पारितंत्र विविधता पृथ्वी पर पाए जाने वाले पारितंत्रों में उपस्थित उस विभिन्नता को कहते हैं, जिसमें प्रजातियों का निवास होता है। पारितंत्र विविधता विविध जैव-भौगोलिक क्षेत्रों; जैसे—झील, मरुस्थल, आदि में प्रतिबिंबित होती है। जैव-विविधता का मानव जीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैव-विविधता के बिना पृथ्वी पर मानव जीवन असंभव है।

पारितंत्रों के क्षय के कारण लगभग 27,000 प्रजातियाँ प्रतिवर्ष विलुप्त हो रही हैं। इनमें से ज्यादातर उष्णकटिबंधीय छोटे जीव हैं। अगर जैव-विविधता क्षरण की वर्तमान दर कायम रही तो विश्व की एक-चौथाई प्रजातियों का अस्तित्व सन् 2050 आते तक समाप्त हो जाएगा।

जैव-विविधता के विभिन्न लाभ निम्नलिखित हैं—जैव-विविधता भोजन, कपड़ा, लकड़ी, ईंधन तथा चारा आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। विभिन्न प्रकार की फसलें; जैसे गेहूँ (ट्रिटिकम एस्टिवम), धान (ओराइजा सेटाइवा), जौ (हारडियम वलगेयर), मक्का (जिया मेज), ज्वार (सोरघम वलगेयर), बाजरा (पेनिसिटम टाईफाइडिस), रागी (इल्यूसिन कोरकेना), अरहर (कैजनस कैजान), चना (साइसर एरियन्टिनम), मसूर (लेन्स कुलिनेरिस) आदि से हमारी भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है; जबकि कपास (गासिपियम हरसुटम) जैसी फसल हमारी कपड़े संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

सागवान (टेक्टोना ग्रान्डिस), साल (शोरिया रोबस्टा), शीशम (डेलवर्जिया सिसू) जैसे वृक्षों की प्रजातियाँ निर्माणकार्यों हेतु लकड़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। बबूल (अकेसिया नाइलोटिका), शिरीष (एल्बिजिया लिबेक), सफेद शिरीष (एल्बिजिया प्रोसेरा), जामुन (साइजिजियम क्यूमिनाई), खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया), हल्दू (हेल्डिना कार्डिफोलिया), करंज (पानगैमिया पिन्नेटा) आदि वृक्षों की प्रजातियों से हमारी ईंधन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है; जबकि शिरीष (एल्बिजिया लिबेक), घमार (मेलाइना आरबोरिया), सहजन (मोरिंगा आलिफेरा), शहतूत (मोरस अल्बा), बेर (जिजिफस जुजुबा), बबूल (अकेसिया नाइलोटिका), करंज (पानगैमिया पिन्नेटा), नीम (एजाडिराक्टा इंडिका) आदि वृक्षों की प्रजातियों से पशुओं के लिए चारा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

जैव-विविधता कृषि पैदावार बढ़ाने के साथ-साथ रोगरोधी तथा कीटरोधी फसलों की किस्मों के विकास में सहायक होती है। हरित क्रांति के लिए उत्तरदायी गेहूँ की बौनी किस्मों का विकास जापान में पाए जाने वाली नारीन-10 नामक गेहूँ की प्रजाति की मदद से किया गया था। इसी प्रकार धान की बौनी किस्मों का विकास ताइवान में पाए जाने वाली डी-जिओ-ऊ-जेन नामक धान की प्रजाति से किया गया था।

सन् 1970 के प्रारंभिक वर्षों में विषाणु के संक्रमण से होने वाली धान की ग्रासी स्टन्ट नामक बीमारी के कारण एशिया महाद्वीप में 1,60,000 हेक्टेयर से भी ज्यादा फसल को नुकसान पहुँचा था। धान की जातियों में इस बीमारी के प्रति प्रतिरोधीक्षमता विकसित करने हेतु मध्य भारत में पाई जाने वाली जंगली धान की प्रजाति ओराइजा निभरा का

उपयोग किया गया था। आई आर 36 नामक विश्वप्रसिद्ध धान की जाति के भी विकास में ओराइजा निभरा का उपयोग किया गया है।

वानस्पतिक जैव-विविधता औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। एक अनुमान के अनुसार आज लगभग 30 प्रतिशत उपलब्ध औषधियों को उष्णकटिबंधीय वनस्पतियों से प्राप्त किया जाता है। उष्णकटिबंधीय शाकीय वनस्पति सदाबहार (कैथरेन्थस रोसियस) बिक्रिस्टीन तथा विनव्लास्टीन नामक क्षारों का स्रोत होती है। जिसका उपयोग रक्त कैंसर के उपचार में होता है।

सर्पगंधा (राओल्फिआ सरपेन्टीना) पादप रेसर्पीन नामक महत्त्वपूर्ण क्षार का स्रोत होती है, जिसका उपयोग उच्च रक्तचाप के उपचार में किया जाता है। गुग्गुलु (कामीफेरा बिटाई) नामक पौधे से प्राप्त गोंद का उपयोग गठिया के इलाज में किया जाता है। सिनकोना (सिनकोना कैलिसिया) वृक्ष की छाल से प्राप्त कुनैन नामक क्षार का उपयोग मलेरिया ज्वर के उपचार में किया जाता है। इसी प्रकार आर्टिमिसिया एनुआ नामक पौधे से प्राप्त आर्टिमिसिनीन नामक रसायन का उपयोग मस्तिष्क मलेरिया के उपचार में होता है। जंगली रतालू (डायसकोरिया डेल्टाइडिस) से प्राप्त डायसजेनीन नामक रसायन का उपयोग स्त्री गर्भनिरोधक के रूप में होता है।

जैव-विविधता पर्यावरण प्रदूषण के निस्तारण में सहायक होती है। प्रदूषकों का विघटन तथा उनका अवशोषण कुछ पौधों की विशेषता होती है। सदाबहार (कैथरेन्थस रोसियस) नामक पौधे में ट्राइनाइट्रोटालुइन जैसे घातक विस्फोटक को विघटित करने की क्षमता होती है। सूक्ष्मजीवों की विभिन्न प्रजातियाँ जहरीले बेकार पदार्थों की साफ-सफाई में सहायक होती हैं। सूक्ष्मजीवों की स्यूडोमोनास प्यूटिडा तथा आर्थोबैक्टर विस्कोसा में औद्योगिक अपशिष्ट से विभिन्न प्रकार की भारी धातुओं को हटाने की क्षमता होती है।

पौधों की कुछ प्रजातियों में मृदा से भरी धातुओं जैसे—कॉपर, कैडमियम, मरकरी, क्रोमियम के अवशोषण तथा संचयन की क्षमता पाई जाती है। इन पौधों का उपयोग भारी धातुओं के निस्तारण में किया जा सकता है। भारतीय सरसों (ब्रैसिका जूनसिया) में मृदा से क्रोमियम तथा कैडमियम के अवशोषण की क्षमता पाई जाती है। जलीय पौधे; जैसे—जलकुंभी (आइकार्निया कैसपीज), लैम्ना, साल्विनिया तथा एजोला का उपयोग जल में मौजूद भारी धातुओं (कॉपर, कैडमियम, आयरन एवं मरकरी) के निस्तारण में होता है।

जैव-विविधता में संपन्न वन पारितंत्र कार्बन-डाइऑक्साइड के प्रमुख अवशोषक होते हैं। कार्बन-डाइऑक्साइड हरित गृह गैस है, जो वैश्विक तपन के लिए उत्तरदायी है। उष्णकटिबंधीय वनविनाश के कारण आज वैश्विक तापमान में निरंतर वृद्धि हो रही है, जिसके कारण भविष्य में वैश्विक जलवायु के अव्यवस्थित होने का खतरा दिनोदिन बढ़ रहा है। जैव-विविधता मृदा निर्माण के साथ-साथ उसके संरक्षण में भी सहायक होती है। जैव-विविधता मृदा संरचना को सुधारती है तथा जलधारण-क्षमता एवं पोषक तत्त्वों की मात्रा को बढ़ाती है।

जैव-विविधता जल संरक्षण में भी सहायक होती है; क्योंकि यह जलीय चक्र को गतिमान रखती है। वानस्पतिक जैव-विविधता, भूमि में जल रिसाव को बढ़ावा देती है, जिससे भूमिगत जलस्तर बना रहता है। जैव-विविधता पोषक चक्र को गतिमान रखने में सहायक होती है। वह पोषक तत्त्वों की मुख्य अवशोषक तथा उनका प्रमुख स्रोत होती है। मृदा की सूक्ष्मजीवी विविधता पौधों के मृत भाग तथा मृत जंतुओं को विघटित कर पोषक तत्त्वों को मृदा से मुक्त कर देती है, जिससे यह पोषक तत्त्व पुन: पौधों को प्राप्त होते हैं।

जैव-विविधता पारितंत्र को स्थिरता प्रदान कर पारिस्थितिक संतुलन को बरकरार रखती है। पौधे तथा जंतु एकदूसरे से खाद्य-शृंखला जाल द्वारा जुड़े होते हैं। एक प्रजाति की विलुप्ति दूसरे के जीवन को प्रभावित करती है। इस प्रकार पारितंत्र कमजोर हो जाता है। पौधे शाकभक्षी जानवरों के भोजन के स्रोत होते हैं; जबकि जानवरों का मांस मनुष्य के लिए प्रोटीन का महत्त्वपूर्ण स्रोत होता है। समुद्र के किनारें खड़े जैव-विविधतासंपन्न ज्वारीय वन (मैंग्रोव वन) प्राकृतिक आपदाओं जैसे समुद्री तूफान तथा सुनामी के खिलाफ ढाल का काम करते हैं।

जैव-विविधता के विभिन्न सामाजिक लाभ भी हैं। प्रकृति के अध्ययन के लिए यह सबसे उत्तम प्रयोगशाला है। शोध, शिक्षा तथा प्रसार कार्यों का विकास, प्रकृति एवं उसकी जैव-विविधता की मदद से ही संभव है। इस बात को साबित करने के लिए तमाम साक्ष्य हैं कि मानव संस्कृति तथा पर्यावरण का विकास साथ-साथ हुआ है। अत: सांस्कृतिक पहचान के लिए जैव-विविधता का होना अति

आवश्यक है। जैविक रूप से संपन्न वन पारितंत्र, वन्य-जीवों तथा आदिवासियों का घर होता है। आदिवासियों की संपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति वनों द्वारा होती है। वनों के क्षय से न सिर्फ आदिवासी संस्कृति प्रभावित होगी, अपितु वन्य जीवन भी प्रभावित होगा। अत: जैव-विविधता का अत्यधिक महत्त्व है। ❑

**कौशलपुर के पुरोहित आचार्य भार्गव भगवान शिव के परम भक्त थे। उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ। ज्योतिषियों ने कहा कि वह बड़ा होकर या तो डाकू बनेगा अथवा संत। दोनों संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए आचार्य भार्गव ने पुत्र का नाम निष्कलंक रखा। बालक मेधावी था एवं परिश्रमी भी। आचार्य ने उसे घर से दूर एक गुरुकुल भेज दिया। गुरुकुल के समीप ही उसके आवास की व्यवस्था एक संबंधी के यहाँ की गई, जिसे मद्यपान की बुरी आदत थी। जब इसका पता निष्कलंक को लगा तो उसने अपने संबंधी से कहा कि वह इसकी जानकारी अपने पिता को देगा। आचार्य भार्गव का सम्मान बहुत था, इसलिए उस संबंधी ने घबराकर तुरंत झूठ बोला—"मैं तो मद्यपान एक गुह्य विद्या सीखने के उद्देश्य से करता हूँ। तुम चाहो तो यह विद्या तुम्हें भी सिखा सकता हूँ।"**

**नया ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से निष्कलंक ने मद्यपान प्रारंभ कर दिया, पर परिणाम शुभ नहीं हुआ। विद्या तो प्राप्त नहीं ही होनी थी, पर निरंतर मद्यपान से निष्कलंक का चरित्र कलंकित होने लगा। एक आदर्श विद्यार्थी से वह एक दुर्दांत डाकू में परिवर्तित हो गया। एक दिन प्रसिद्ध संत ज्योतिर्भिक्षु उस मार्ग से निकले, जिस पर वह डकैतियाँ डाला करता था। ज्योतिर्भिक्षु अंतर्ज्ञानी थे, अत: उन्हें भान हो गया कि वह एक उच्च आत्मा है, जो संस्कारवश पथभ्रष्ट हो गई है। उसे उसका जीवनलक्ष्य याद दिलाने के उद्देश्य से ज्योतिर्भिक्षु निष्कलंक से बोले—"तुझे डकैतियाँ ही डालनी हैं तो उनके घर में क्यों नहीं डालता, जिनके पास अपार संपदा है।" निष्कलंक ने पूछा—"वे कौन हैं? मुझे उनका नाम बताओ।" ज्योतिर्भिक्षु मुस्कराकर बोले—"उनका नाम भगवान शिव है, जिनकी भक्ति तुम्हारे पिता किया करते थे। यह सारी सृष्टि उन्हीं की तो है और यह सारा ऐश्वर्य भी उन्हीं का है तो उनसे ज्यादा संपदा तुम्हें किसके पास मिलेगी?" यह सुनते ही निष्कलंक के जन्मजात संस्कार जाग्रत हो उठे एवं उसका मन ग्लानि बोध से भर उठा। वह ज्योतिर्भिक्षु के साथ तपस्या के मार्ग पर निकल पड़ा और अपने जीवन-उद्देश्य को प्राप्त हुआ।**

# गायत्री और यज्ञ—सतयुगी समाज के आध्यात्मिक आधार

मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण—यह युगऋषि का स्पष्ट उद्घोष है, जिसके आधार पर सतयुगी समाज की स्थापना होनी है। इस संदर्भ में भारत को अपनी विशेष भूमिका निभानी है। उसे अपना घर ही नहीं सँभालना है, वरन हर क्षेत्र में विश्व का नेतृत्व भी करना है। अध्यात्म की जन्मभूमि के रूप में इसका शुभारंभ भारत से ही होने जा रहा है, जिसका प्रकाश विश्व के कोने-कोने तक पहुँचना है और युगऋषि के शब्दों में इसका आधार है—गायत्री और यज्ञ का तत्त्वदर्शन।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में भावी समाज के विकास एवं उत्कर्ष के लिए नितांत आवश्यक और उपयोगी सद्गुणों, सत्प्रवृत्तियों व नीतियों को यदि सूत्रबद्ध किया जाए तो वह महत्त्वपूर्ण सूत्र तीन चरणों का चौबीस अक्षरों वाला गायत्री मंत्र है। सामान्य क्रम में गायत्री मंत्र की मंत्रशक्ति की चर्चा की जाती है, लेकिन इस महामंत्र में सन्निहित तत्त्वदर्शन भी कुछ कम नहीं है। इसमें वे सभी तत्त्व समाहित हैं, जो समूचे समाज के लिए आध्यात्मिक आधार प्रस्तुत कर सकें।

युगऋषि के शब्दों में इस युग में न तो धार्मिक विकृतियों का संशोधन मुख्य प्रश्न है और न ही भौतिक जीवन का प्रशिक्षण। वस्तुत: जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह प्रथा-परंपराएँ हों, रीति-रिवाज, वेशभूषा, खान-पान हों अथवा मान-मर्यादा हों—सर्वत्र अविवेकरूपी वह प्रमुख राक्षस घुस बैठा है, जिसके वशवर्ती होकर मनुष्य जाति भ्रष्ट, अनैतिक और बर्बर होती चली जा रही है।

स्पष्ट है आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है मनुष्य के विचारों में सद्विवेक की स्थापना। गायत्री- उपासना को सद्ज्ञान की उपासना भी कहा जाता है। गायत्री महामंत्र के चौबीस अक्षरों में बीज रूप में वे सभी तत्त्व ओत-प्रोत हैं, जो उपासक के हृदय व अंत:करण में, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र एवं व्यक्तित्व के हर आयाम को स्वस्थ, समर्थ एवं विवेकपूर्ण बनाने वाला प्रकाश स्थापित कर सकें।

अनेक तरह की दार्शनिक मान्यताओं के रहते हुए भी गायत्री-उपासना के तत्त्वज्ञान के प्रति आदिकाल से ही ऋषि-मुनि सभी एकमत रहे हैं। जितने भी अवतार हुए हैं उन सब ने उपासना के रूप में आद्यशक्ति भगवती गायत्री को ही इष्टदेव चुना है। उसके पीछे इस दर्शन का ही प्रतिपादन हो रहा है कि मनुष्य जाति की समस्याओं का निराकरण विवेक और सद्ज्ञान से ही संभव है। इस युग में जबकि असुरता ने मानवीय बुद्धि को पूरी तरह आच्छादित कर रखा है तब तो उसकी आवश्यकता और भी अधिक हो जाती है। गायत्री महामंत्र के चौबीस अक्षरों में वे सभी सिद्धांत सूत्र रूप में समाहित हैं, जिनके आधार पर युगांतरकारी परिवर्तन प्रस्तुत होते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में गायत्री भारतीय संस्कृति का प्राण है। वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता के रूप में उसकी भूमिका प्राचीनकाल में भी महान थी। नवयुग में भी उसी बीजमंत्र का विस्तार विश्व संस्कृति के रूप में होना है। उसे नवयुग का कल्पवृक्ष, प्रेरणा उद्गम कहा जाएगा। इन 24 अक्षरों में ज्ञान और विज्ञान के सभी तत्त्व मौजूद हैं, जिनके सहारे व्यक्ति की उत्कृष्टता और समाज की सुव्यवस्था का पुनर्निर्धारण संभव हो सके।

नवयुग में समस्त विश्व को एकता, समता और शुचिता की त्रिवेणी में स्नान करना होगा। व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत बनाना होगा और **वसुधैव कुटुंबकम्** की, **आत्मवत् सर्वभूतेषु** की रीति-नीति अपनाकर चलना होगा। इसके लिए सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक सभी तथ्य बीज रूप में गायत्री महामंत्र में मौजूद हैं। इसमें दार्शनिक, प्रेरणात्मक और सामर्थ्यपरक वे सभी क्षमताएँ विद्यमान हैं, जिनके आधार पर नवयुग का सृजन होने जा रहा है।

गायत्री का तत्त्वज्ञान अगले दिनों पूजा-उपासना की परिधि तक सीमित नहीं रहेगा, वरन उसे सतयुग के आधारभूत आलोक की भूमिका निभाते देखा जाएगा। उन्हीं तथ्यों के आधार पर आदिशक्ति की सामाजिक भूमिका को युगशक्ति कहा गया है। उसका संचरण विश्वमाता के रूप में होगा। जन-जन पर पड़ने वाली उसकी छाया को देवमाता कहा जाएगा।

वेदमाता का यही रूप अगले दिनों दृष्टिगोचर होगा। उसे कल किसी संप्रदाय विशेष की बपौती नहीं माना जाएगा। जाति, लिंग और क्षेत्र की परिधि से आगे बढ़कर नवीन विश्व की संरचना संदर्भ में अपनी अनोखी भूमिका संपन्न करती हुई वह दृष्टिगोचर होगी। सद्ज्ञान की प्रतीक गायत्री महाशक्ति के पूरक के रूप में सत्कर्म के प्रतीक यज्ञ की भूमिका रहेगी।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार—**सयत्कृत्सनां गायत्री-मन्वाह तत् कृत्स्नं प्राणं दधाति**। अर्थात जो व्यष्टिगत एवं समष्टिगत जगत् की व्यवस्था बिठाती है एवं सामंजस्य स्थापित करती है, वही गायत्री है और जो इस व्यवस्था को पूर्णता देता है, वह यज्ञ है। इसी कारण गायत्री को देव संस्कृति की माता और यज्ञ को मानवीय धर्म का पिता कहा गया है। दोनों का युग्म है। यज्ञ अपने में एक समर्थ और समग्र दर्शन है।

इसकी सरल और सुबोध प्रेरणाओं में मनुष्य को उदार बनाने के वे सारे तत्त्व मौजूद हैं, जो संसार के किसी अन्य दर्शन में नहीं हैं। यही कारण है कि उसे भारतीय संस्कृति का पिता कहा गया है। पिता अर्थात पालनकर्त्ता। समाज का परिपालन करने वाला एवं संरक्षण देने वाला। यही वह प्रमुख आधार है, जिससे समाज प्रगति करता है एवं समुन्नत बनता है। यज्ञ का दर्शन व्यक्ति एवं समाज को श्रेष्ठ, शालीन एवं समुन्नत बनाने में समर्थ है। अपने में वह समग्र है। यदि इसे व्यवहार में उतारा जा सके तो यह स्थायी सुख-शांति का मजबूत आधार बन सकता है।

'यज' धातु से निष्पन्न यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं—देवपूजन, संगतिकरण और दान। इन तीनों ही प्रवृत्तियों को व्यक्ति और समाज के उत्कर्ष की दिव्य धाराएँ कहा जा सकता है। देवपूजन का अर्थ है—परिष्कृत व्यक्तित्व, दैवी सद्गुणों का अनुगमन। संगतिकरण अर्थात एकता, सहकारिता, संघबद्धता। दान अर्थात समाजपरायणता, विश्वकौटुंबिकता—उदार सहृदयता। इन तीनों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व यज्ञ करता है।

प्रक्रिया की दृष्टि से यज्ञ मनोवैज्ञानिक शिक्षण की सशक्त विधि है, जिसके द्वारा परोक्ष किंतु स्थायी प्रभाव मन पर पड़ता है व सुसंस्कारों की प्रतिष्ठापना होती है। दृष्टि खुली रखी जाए तो यज्ञ का प्रत्येक कर्मकांड मनुष्य को उपयोगी प्रेरणा देने में सक्षम है। यह मात्र क्रिया-कृत्य नहीं है, वरन अंत:करण में श्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना की एक सफल मनोवैज्ञानिक विधि है।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में यज्ञ का तत्त्वदर्शन उदारता, पवित्रता, सहकारिता की त्रिवेणी पर केंद्रित है। यही तीन तथ्य ऐसे हैं, जो इस विश्व को सुखद, सुंदर और समुन्नत बनाए हुए हैं। ग्रह-नक्षत्र पारस्परिक आकर्षण में बँधे हुए ही नहीं हैं, बल्कि एकदूसरे को महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान भी करते हैं। परमाणु और जीवाणु जगत् भी इन्हीं सिद्धांतों के सहारे अपनी गतिविधियाँ सुनियोजित रीति से चला रहे हैं।

सृष्टि संरचना, गतिशीलता और सुव्यवस्था में संतुलन—इकॉलोजी का सिद्धांत ही सर्वत्र काम करता हुआ दिखाई पड़ता है। हरियाली से प्राणी-पशु निर्वाह, प्राणी शरीर से खाद का उत्पादन, खाद उत्पादन से पृथ्वी को खाद, खाद से हरियाली यह सहकारिता चक्र घूमने से ही जीवधारियों की शरीरयात्रा चल रही है।

समुद्र से बादल, बादलों से भूमि में आर्द्रता, आर्द्रता से नदियों का प्रवाह, नदियों से समुद्र की क्षतिपूर्ति यह जलचक्र धरती और वरुण का संपर्क बनाता और प्राणियों के निर्वाह की उपयुक्त परिस्थितियों को उत्पन्न करता है। शरीर के अवयव एकदूसरे की सहायता करके जीवनचक्र को घुमाते हैं। समाज संरचना के आधार पर अर्थतंत्र, शासनतंत्र तथा दूसरे प्रगतिक्रम चलते हैं। यह यज्ञ-परंपरा ही है, जिसके कारण जड़ और चेतन दोनों ही अपना सुव्यवस्थित रूप बनाए हुए हैं। इसी से यज्ञ तत्त्व को विश्व की नाभि धुरी कहा गया है।

यज्ञ के रूप में समष्टि के हित में स्व की आहुति देने वाली, स्वयं की उपलब्धियों, विभूतियों, सामर्थ्यों को **इदं न मम** कहकर समाज को भावभरा अर्पण करने का शिक्षण देने वाली प्रक्रिया ही भावी समाज का आध्यात्मिक आधार है। गायत्री के साथ इसका युग्म ज्ञान एवं सत्कर्म का युग्म है। परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार थोड़े समय के लिए आस्तिकतावादी सिद्धांतों को लेकर विभिन्न दर्शनों में विभेद हो सकता है और होता भी है, पर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना करने वाले व्यक्ति और समाज को श्रेष्ठ, समुन्नत, शालीन बनाने वाले शाश्वत सिद्धांतों के प्रति नहीं।

यज्ञ दर्शन विवादों से परे ऐसा ही एक दर्शन है, जिसमें वे सारे सिद्धांत समाहित हैं जिनके अवलंबन से व्यक्ति एवं समाज की उन्नति एवं शांति निर्भर करती है। इस तरह गायत्री के साथ उसका समन्वय भावी समस्त समाज के लिए ऐसा सबल आध्यात्मिक आधार है, जिसे समर्थ एवं समग्र कहना

कोई अतियुक्ति नहीं। इसी के बलबूते आज का बौद्धिक समाज कल के नवयुग में अपना रूपांतरण आध्यात्मिक समाज के रूप में कर सकेगा।

हर गायत्री परिजन का यह सौभाग्य है कि उसे गायत्री साधक एवं यज्ञ भगवान के आराधक के रूप में सतयुगी समाज के निमित्त देव संस्कृति के संवाहक के रूप में अपनी भूमिका निभाने और योगदान देने का सुअवसर मिला है। मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्गीय परिस्थितियों के अवतरण के साथ जिसका सुखद आगाज होना सुनिश्चित है। ध्यान देने योग्य बात इतनी ही है कि हम इस दिशा में कितने सजग हैं तथा इन ऐतिहासिक पलों में हमारे नैष्ठिक प्रयास में कहीं कोई चूक या कमी तो नहीं रह रही है। ❑

**हेमकूट राज्य के राजकुमार जीमूतवाहन अपने मित्रों के साथ समुद्र तट पर भ्रमण को निकले। मार्ग में एक छोटा-सा पर्वत पड़ा, जिसका नाम गोकर्ण था। उन्होंने देखा कि वहाँ अस्थियों के बड़े-बड़े ढेर लगे हुए थे। उन्हें देख राजकुमार ने अपने मित्र वसु से इसका कारण पूछा। वसु ने उत्तर दिया—"ये नागों की अस्थियों के ढेर हैं। नागों व गरुड़ की पुरानी शत्रुता है, पर नाग शारीरिक बल में गरुड़ से कमतर हैं, अतः उन्होंने यह समझौता किया है—जिसके अनुसार प्रतिदिन एक नाग अपने वध हेतु गरुड़ के पास आता है और उसकी क्रोध-ज्वाला शांत करता है।"**

**यह सुनकर राजकुमार का हृदय दयार्द्र हो उठा और उन्होंने इस अन्याय का प्रतिकार करने का प्रण किया, पर इतनी शक्ति उनमें नहीं थी कि वे गरुड़ को परास्त कर पाते। इसलिए वे नाग वेश में गरुड़ के समक्ष पहुँच गए। गरुड़ ने उनका वध कर दिया, पर उसे आश्चर्य हुआ कि प्रतिदिन नाग मृत्यु के समय रोता-चीखता था, फिर यह क्यों नहीं चिल्लाया? पता करने पर उसे ज्ञात हुआ कि यह शव राजकुमार जीमूतवाहन का है। वह यह जानकर ग्लानि से भर उठा और बोला—"संसार में ऐसी भी विभूतियाँ हैं, जो परोपकार हेतु अपने प्राण दे देती हैं और एक मैं हूँ, जो अपनी शत्रुता के लिए अनेक निर्दोषों का वध कर देता हूँ।" उस दिन से गरुड़ ने नागों की बलि लेना बंद कर दिया। जीमूतवाहन अपने प्राणों की आहुति देकर भी अमर हो गए।**

# नववर्ष की मंगलकामना

नववर्ष सभी प्राणियों को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे। सभी अपने धर्म-कर्त्तव्य का पालन करें। सृष्टि में किसी को कष्ट न हो। सभी स्वस्थ, सुखी, समृद्ध एवं आपसी सौहार्द से ओत-प्रोत रहें।

❋ अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा

❋ युग निर्माण योजना
मथुरा

❋ शांतिकुंज
हरिद्वार

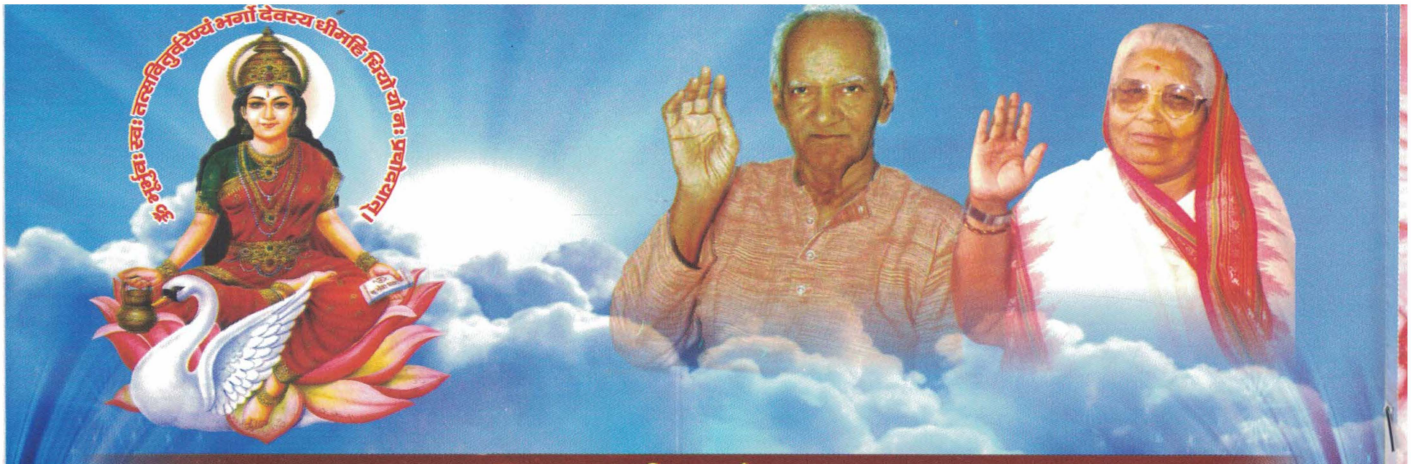


# प्रमुख पर्व-त्योहार- 2022

| | | |
|---|---|---|
| 09 | जनवरी | गुरु गोविंद सिंह जयंती |
| 12 | जनवरी | स्वामी विवेकानंद जयंती/राष्ट्रीय युवा दिवस |
| 14 | जनवरी | मकर संक्रांति |
| 23 | जनवरी | नेताजी सुभाष चंद्र बोस जयंती |
| 26 | जनवरी | गणतंत्र दिवस |
| 30 | जनवरी | शहीद दिवस |
| 05 | फरवरी | वसंत पंचमी/बोध दिवस |
| 16 | फरवरी | संत रविदास जयंती/माघी पूर्णिमा |
| 01 | मार्च | महाशिवरात्रि |
| 04 | मार्च | रामकृष्ण परमहंस जयंती/फुलरिया दूज |
| 17 | मार्च | होलिका दहन |
| 18 | मार्च | होली, धूलिवंदन |
| 02 | अप्रैल | नवरात्रारंभ/संवत्सरारंभ |
| 10 | अप्रैल | श्रीराम नवमी/समर्थ गुरु रामदास जयंती |
| 14 | अप्रैल | महावीर स्वामी जयंती/ आंबेडकर जयंती |
| 16 | अप्रैल | हनुमज्जयंती/चैत्र पूर्णिमा |
| 02 | मई | छत्रपति शिवाजी जयंती |
| 03 | मई | परशुराम जयंती/अक्षय तृतीया/ईदुलफित्र* |
| 07 | मई | रवींद्रनाथ टैगोर जयंती |
| 16 | मई | बुद्ध पूर्णिमा |
| 30 | मई | वट सावित्री/सोमवती अमावस्या |
| 10 | जून | गायत्री जयंती/गंगा दशहरा/महाप्रयाण दिवस पूज्य गुरुदेव |
| 11 | जून | निर्जला एकादशी(भीमसेनी एकादशी) |
| 14 | जून | कबीर जयंती/ज्येष्ठ पूर्णिमा |
| 10 | जुलाई | देवशयनी एकादशी/ईदुज्जुहा* |
| 13 | जुलाई | गुरु पूर्णिमा (व्यास पूर्णिमा) |
| 31 | जुलाई | मुहर्रम 1* |
| 12 | अगस्त | रक्षाबंधन/श्रावणी पर्व |
| 15 | अगस्त | स्वतंत्रता दिवस/बहुला चौथ |
| 18 | अगस्त | श्रीकृष्ण जन्माष्टमी 'स्मा0' |
| 19 | अगस्त | श्रीकृष्ण जन्माष्टमी 'वै0' |
| 30 | अगस्त | हरितालिका व्रत |
| 31 | अगस्त | गणेश चतुर्थी |
| 01 | सितंबर | ऋषि पंचमी |
| 02 | सितंबर | बलदेव छठ (देव छठ) |
| 04 | सितंबर | राधाष्टमी |
| 07 | सितंबर | वामन जयंती |
| 10 | सितंबर | महालयारंभ/महाप्रयाण दिवस वंदनीया माताजी |
| 14 | सितंबर | माता भगवती देवी शर्मा जयंती |
| 17 | सितंबर | विश्वकर्मा जयंती |
| 23 | सितंबर | पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जयंती |
| 25 | सितंबर | पितृमोक्ष अमावस्या |
| 26 | सितंबर | शारदीय नवरात्रारंभ |
| 02 | अक्टूबर | गांधी/शास्त्री जयंती |
| 05 | अक्टूबर | विजयादशमी |
| 09 | अक्टूबर | शरद पूर्णिमा/वाल्मीकि जयंती |
| 13 | अक्टूबर | करवा चौथ |
| 22 | अक्टूबर | धन्वंतरि जयंती/धनतेरस |
| 23 | अक्टूबर | रूप चतुर्दशी/छोटी दीपावली |
| 24 | अक्टूबर | दीपावली |
| 26 | अक्टूबर | अन्नकूट/गोवर्धन पूजा |
| 27 | अक्टूबर | भाई दूज/यमद्वितीया |
| 02 | नवंबर | अक्षय नवमी/कूष्मांड नवमी |
| 04 | नवंबर | देव प्रबोधिनी एकादशी/देवठान |
| 08 | नवंबर | गुरुनानक जयंती/देव दीपावली |
| 14 | नवंबर | बालदिवस |
| 03 | दिसंबर | गीता जयंती/मोक्षदा एकादशी 'स्मा0' |
| 07 | दिसंबर | दत्तात्रेय जयंती |
| 25 | दिसंबर | क्रिसमस |
| 29 | दिसंबर | गुरु गोविंद सिंह जयंती |

*चंद्रदर्शन के अनुसार परिवर्तनीय

# मंगलवर्ष- 2022

## जनवरी

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 30 | 31 | | | | | 01 |
| 02 | 03 | 04 | 05 | 06 | 07 | 08 |
| 09 | 10 | 11 | 12 | 13 | 14 | 15 |
| 16 | 17 | 18 | 19 | 20 | 21 | 22 |
| 23 | 24 | 25 | 26 | 27 | 28 | 29 |

## फरवरी

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | 01 | 02 | 03 | 04 | 05 |
| 06 | 07 | 08 | 09 | 10 | 11 | 12 |
| 13 | 14 | 15 | 16 | 17 | 18 | 19 |
| 20 | 21 | 22 | 23 | 24 | 25 | 26 |
| 27 | 28 | | | | | |

## मार्च

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | 01 | 02 | 03 | 04 | 05 |
| 06 | 07 | 08 | 09 | 10 | 11 | 12 |
| 13 | 14 | 15 | 16 | 17 | 18 | 19 |
| 20 | 21 | 22 | 23 | 24 | 25 | 26 |
| 27 | 28 | 29 | 30 | 31 | | |

## अप्रेल

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | 01 | 02 |
| 03 | 04 | 05 | 06 | 07 | 08 | 09 |
| 10 | 11 | 12 | 13 | 14 | 15 | 16 |
| 17 | 18 | 19 | 20 | 21 | 22 | 23 |
| 24 | 25 | 26 | 27 | 28 | 29 | 30 |

## मई

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 01 | 02 | 03 | 04 | 05 | 06 | 07 |
| 08 | 09 | 10 | 11 | 12 | 13 | 14 |
| 15 | 16 | 17 | 18 | 19 | 20 | 21 |
| 22 | 23 | 24 | 25 | 26 | 27 | 28 |
| 29 | 30 | 31 | | | | |

## जून

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | 01 | 02 | 03 | 04 |
| 05 | 06 | 07 | 08 | 09 | 10 | 11 |
| 12 | 13 | 14 | 15 | 16 | 17 | 18 |
| 19 | 20 | 21 | 22 | 23 | 24 | 25 |
| 26 | 27 | 28 | 29 | 30 | | |

## जुलाई

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 31 | | | | | 01 | 02 |
| 03 | 04 | 05 | 06 | 07 | 08 | 09 |
| 10 | 11 | 12 | 13 | 14 | 15 | 16 |
| 17 | 18 | 19 | 20 | 21 | 22 | 23 |
| 24 | 25 | 26 | 27 | 28 | 29 | 30 |

## अगस्त

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | 01 | 02 | 03 | 04 | 05 | 06 |
| 07 | 08 | 09 | 10 | 11 | 12 | 13 |
| 14 | 15 | 16 | 17 | 18 | 19 | 20 |
| 21 | 22 | 23 | 24 | 25 | 26 | 27 |
| 28 | 29 | 30 | 31 | | | |

## सितंबर

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | 01 | 02 | 03 |
| 04 | 05 | 06 | 07 | 08 | 09 | 10 |
| 11 | 12 | 13 | 14 | 15 | 16 | 17 |
| 18 | 19 | 20 | 21 | 22 | 23 | 24 |
| 25 | 26 | 27 | 28 | 29 | 30 | |

## अक्टूबर

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 30 | 31 | | | | | 01 |
| 02 | 03 | 04 | 05 | 06 | 07 | 08 |
| 09 | 10 | 11 | 12 | 13 | 14 | 15 |
| 16 | 17 | 18 | 19 | 20 | 21 | 22 |
| 23 | 24 | 25 | 26 | 27 | 28 | 29 |

## नवंबर

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | 01 | 02 | 03 | 04 | 05 |
| 06 | 07 | 08 | 09 | 10 | 11 | 12 |
| 13 | 14 | 15 | 16 | 17 | 18 | 19 |
| 20 | 21 | 22 | 23 | 24 | 25 | 26 |
| 27 | 28 | 29 | 30 | | | |

## दिसंबर

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | 01 | 02 | 03 |
| 04 | 05 | 06 | 07 | 08 | 09 | 10 |
| 11 | 12 | 13 | 14 | 15 | 16 | 17 |
| 18 | 19 | 20 | 21 | 22 | 23 | 24 |
| 25 | 26 | 27 | 28 | 29 | 30 | 31 |

# शुभकामना

**मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।**
**मान्त स्थुर्नो अरातयः ।।**

— अथर्ववेद, 13/01/59

हम सन्मार्ग से कभी विचलित न हों । सदैव श्रेष्ठ कर्म करते रहें। काम, क्रोध आदि मनोविकार हमारे पास न आएँ।

# पाखंड-खंडन करने को जब चले गुरुनानक देव

श्री गुरुनानक देव जब लाहौर निवासियों से विदा लेकर प्रस्थान करने लगे तो भाई मरदाना जी ने उनसे पूछा—"गुरुदेव! अब हम कहाँ जा रहे हैं?" गुरुनानक देव ने कहा—"भाई जी! आप देख ही रहे हैं कि ज्ञानहीन होने के कारण आज लोग धर्म के नाम पर, पाखंड के नाम पर, कर्मकांड के नाम पर कैसे लूटे जा रहे हैं। यदि कोई इन पाखंडों का, कर्मकांडों का विरोध करता है तो पाखंड फैलाने वाले कुछ लोग उस व्यक्ति विशेष को अपनी उदरपूर्ति में बाधक जानकर, उसका दमन करने हेतु उस पर मनगढ़ंत आरोप लगाने लगते हैं।"

गुरुनानक देव बोले—"जैसे कि मेरे बारे में भी यह प्रचारित किया गया कि मैं अधार्मिक हूँ, कुमार्गी हूँ आदि। अत: जनसाधारण को पाखंडों का शिकार होने से बचाने के लिए, उनमें जाग्रति लाने के लिए हमें उन सभी स्थानों पर पहुँचना होगा? जहाँ से पाखंडवाद फैलाकर जनता को गुमराह करने का काम चल रहा है। इस हेतु हमें उन तथाकथित धर्मस्थलों को अपने प्रचार का क्षेत्र बनाना होगा तथा उन धर्म के ठेकेदारों से लोहा लेकर जनता का मार्गदर्शन करना होगा।"

तब मरदाना जी बोले—"परंतु गुरुदेव जी! हम तो अकेले हैं तथा निहत्थे भी हैं। फिर हम उन लोगों का सामना कैसे कर पाएँगे भला?" नानक जी ने कहा—"आप इसकी चिंता न करें; क्योंकि हम अकेले नहीं हैं। हमारे संग, वह कर्त्तापुरुष (करतार) स्वयं है तथा हम लोग शास्त्रार्थ से युद्ध लड़ेंगे अर्थात केवल विचार-विमर्श से समस्त मानव जाति का मन जीतकर उनमें से भूले-भटकों को सत्य के मार्ग पर चलने का दिशा-निर्देश ही देंगे, जिससे उनके कार्य निष्फल न होकर फलीभूत हों, लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को पहचान सकें और उसे अपने जीवन में जी सकें। साथ ही धार्मिक अंधविश्वास, धार्मिक पाखंड के शिकार होने से बच भी सकें और कर्त्तापुरुष (करतार) के मार्ग पर चलकर अपने जीवन को धन्य बना सकें। बस, हमारा यही वास्तविक लक्ष्य है।"

इस पर मरदाना जी ने फिर प्रश्न किया—"गुरुदेव! इस कार्य के लिए हमें सबसे पहले कहाँ जाना चाहिए?" नानक जी ने कहा—"हमें इस प्रकार अपनी योजना बनानी चाहिए कि हम सभी तीर्थस्थलों पर ठीक उस समय पहुँचें, जब वहाँ यात्री किसी विशेष उत्सव में भाग लेने के लिए उपस्थित होते हैं। इस प्रकार वहाँ पर एकत्रित भीड़ को संबोधित करने में हमें आसानी होगी तथा हमारा संदेश, करतार पुरुष (परमात्मा) का दिव्य संदेश, धर्म का वास्तविक संदेश, वास्तविक स्वरूप वहाँ से दूर-दूर पहुँच जाएगा, प्रसारित हो जाएगा; क्योंकि वहाँ पर भिन्न-भिन्न स्थानों से आकर लोग जमा होते हैं, एकत्रित होते हैं।"

तब भाई मरदाना जी ने कहा—"हाँ गुरुदेव! आप ठीक ही कहते हैं, पर पहले कहाँ चला जाए?" नानक जी ने कहा—"कुछ दिनों में बैसाखी के अवसर पर हरिद्वार में कुंभ का मेला लगने वाला है। वहाँ पर श्रद्धालु तीर्थयात्री पवित्र गंगा में स्नान के लिए दूर-दूर से आएँगे। अत: हमें वहीं पहुँचकर इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए।" मरदाना जी प्रसन्न हुए और बोले—"हाँ गुरुदेव! यही उचित रहेगा।" इस प्रकार हरिद्वार को अपनी मंजिल मानकर जनमानस को करतार पुरुष (परमात्मा) का दिव्य संदेश सुनाने व पाखंड खंडन करने को गुरुनानक देव चल पड़े।

हरिद्वार पहुँचने पर उनकी मुलाकात अनेक तीर्थयात्रियों से हुई, जो भारत के विभिन्न स्थानों से अपनी आस्था की पुकार के वशीभूत होकर हरिद्वार के कुंभ क्षेत्र में एकत्रित हुए थे। उनमें से अनेकों के मन में अनेक जिज्ञासाएँ थीं, परंतु उनका सम्यक समाधान करने वाला वहाँ कोई दिखाई नहीं पड़ता था। गुरुनानक देव जी ने ऐसे ही एक स्थान पर अपना डेरा बसाया और वहाँ पर श्रद्धालुओं को समरसता व ईश्वरप्राप्ति के मार्ग का संदेश देना प्रारंभ किया। देखते-ही-देखते वहाँ अनेक जिज्ञासुओं की एवं मुमुक्षुओं की कतारें लगने लगीं, जो गुरुनानक देव जी से अपने प्रश्नों का उत्तर चाहते थे।

एक ऐसे ही जिज्ञासु भक्त ने गुरुनानक देव जी से प्रश्न किया—"महाराज! संसार में रहकर भगवान को पाना कठिन

क्यों हो जाता है ?'' गुरुनानक देव जी बोले—''वत्स! संसार का प्रवाह मनुष्य को कामनाओं-वासनाओं के फेरे में अनवरत डालता चला जाता है। उससे मुक्ति पाने के लिए बाहर की भाग-दौड़ से स्वयं को अप्रभावित रखते हुए अपने आंतरिक जगत् में परमात्मा को ढूँढ़ने का प्रयास करना चाहिए।''

वे आगे बोले—''यदि तुम ध्यान से देखो तो संसार का निर्माण ही महत्त्वाकांक्षा की भाग-दौड़ को पूर्ण करने के लिए हुआ है। तुम्हारे पास घर है, इतना पर्याप्त नहीं है। समाज की दृष्टि में तुम तभी सफल माने जाओगे, जब वह घर औरों से बड़ा भी हो। तुम्हारे पास रोजगार-व्यापार है, इतना पर्याप्त नहीं—वह औरों से बेहतर भी होना चाहिए। तुम्हारे पास गाय-घोड़े हैं, इतना पर्याप्त नहीं है—वे औरों से ज्यादा भी होने चाहिए।''

गुरुनानक देव जी उस व्यक्ति को समझाते हुए बोले—''इस तरह से देखो तो लगता है कि समाज की दृष्टि में प्रगति का अर्थ प्रतिद्वंद्विता है। यहाँ हर व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से आगे निकलने की दौड़ में लगाया जा रहा है और जिसके जीवन में इतनी भाग-दौड़ मची हुई हो, उसे मन की शांति, चित्त की स्थिरता और परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है। अशांत व्यक्ति के मन में सुख कैसे आ सकता है ?''

गुरुनानक देव जी बोले—''इसका समाधान एक ही है कि इस भाग-दौड़ से स्वयं को मुक्त करते हुए, मन को स्थिर करते हुए ईश्वर की प्राप्ति के लिए अपनी संपूर्ण सामर्थ्य का उपयोग किया जाए। आंतरिक जगत् में किए गए पुरुषार्थ का नाम ही अध्यात्म है। अपने ऊपर विजय प्राप्त करने वाला ही साधक कहलाता है।'' गुरुनानक देव जी के उत्तर ने उस जिज्ञासु को पूर्णतया संतुष्ट कर दिया और इस तरह अनेकों का पथ प्रशस्त हुआ। ❑

**सम्राट चंद्रगुप्त के राज्य में सभी सुखपूर्वक रहते थे। उनके राज्य में कभी चोरी नहीं होती थी। यदि कभी कोई चोरी जैसा अपराध कर भी लेता था तो उसे कड़ा दंड दिया जाता था। चंद्रगुप्त के महल में अनेक नौकर कार्य करते थे। उन्हीं में एक गंगू नाम का व्यक्ति था। गंगू का रामू नाम का एक दस वर्ष का लड़का था। गंगू जब दीवान आदि के बच्चों को अच्छे कपड़े पहनते, अच्छे गुरुकुल में जाते देखता तो उसे लगता कि मेरे पास इतनी दौलत होती तो मेरे बच्चे भी यह पहनते। काश! मैं भी रामू को अच्छे कपड़े पहना सकूँ और अच्छे गुरुकुल में जाते देख सकूँ।**

**इसी लालच में एक दिन गंगू ने राजमहल से बहुत सारा धन चुरा लिया। चंद्रगुप्त ने इनाम की घोषणा करवा दी, परंतु गंगू के पुत्र ने ही उसे पकड़वा दिया। चंद्रगुप्त ने रामू से कहा—''तुम अपने ही पिता को पकड़ लाए और क्या तुम्हें पता है कि अब दंडस्वरूप इनके हाथ काट दिए जाएँगे।'' रामू से इनाम माँगने को कहा तो रामू बोला—''मुझे इनाम में केवल यह चाहिए कि आप मेरे पिता को क्षमा कर दें।'' चंद्रगुप्त रामू की सच्चाई से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने गंगू को तो छोड़ ही दिया व साथ ही जितने रुपये उसने चुराए थे, उससे दुगने रुपये रामू के लिए दे दिए।**

चेतना की शिखर यात्रा – 232

# साधना स्वर्ण जयंती

**विगत अंक में आपने पढ़ा कि पूज्य गुरुदेव द्वारा घोषित साधना स्वर्ण जयंती की विशिष्ट साधना का हिस्सा बनने की चाह में अनेक गायत्रीसाधकों ने वसंत पंचमी से पूर्व से ही अपनी साधना आरंभ कर दी थी। उन्हीं में एक बंगाल निवासी कृष्णानंद भी थे, जिनकी गुरु के प्रति श्रद्धा को बढ़ाने में किन्हीं अज्ञात दिगंबर साधु द्वारा सत्संग के माध्यम से मदद की गई। गीता जयंती के अवसर पर घोषित इस विशिष्ट साधना में सहभागिता की संख्या में तय की गई सीमितता को लेकर बहुसंख्यक साधक अत्यंत व्यथित थे व विभिन्न माध्यमों से पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के समक्ष अपना दु:ख भी प्रकट कर रहे थे। गायत्रीसाधकों की मन:स्थिति को भली प्रकार भाँपते हुए पूज्यवर ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष, दोनों ही माध्यमों से यह आश्वासन देते हुए साधकों को धीरज बँधाया कि सभी की भूमिकाएँ, कार्यक्षेत्र एवं समयावधि सुनिश्चित हैं, अत: सभी अपनी पात्रता में यथायोग्य बढ़ोत्तरी करते चलें। आइए पढ़ते हैं इससे आगे का विवरण ....**

## यह भी भगवान का काम

वसंत पंचमी के बाद साधकों को विलक्षण अनुभूतियाँ हुईं। उन्हें भी, जो इन मंडलियों में सम्मिलित नहीं हो सके थे। जहाँगीरपुर (महाराष्ट्र) के एक कार्यकर्त्ता संयम जोगलेकर गुरुदेव के मथुरा छोड़ देने के बाद से ही ज्ञानरथ चलाते थे। यों उनका बिजली का अच्छा व्यवसाय था। बल्ब, बिजली के तार और प्रेस, चूल्हे जैसे उपकरणों की डीलरशिप थी।

उन्होंने एक स्थायी कार्यकर्त्ता ज्ञानरथ चलाने के लिए नियुक्त कर रखा था, जो सुबह आठ बजे से शाम दस बजे तक चल पुस्तकालय चलाता। दोपहर में दो घंटे का भोजनावकाश होता। संयम जोगलेकर को इतने भर से संतोष नहीं होता। शाम चार बजे से सात बजे तक वे स्वयं ज्ञानरथ चलाते। गाड़ी लेकर जहाँगीरपुर के गली-मुहल्लों में जाते और साहित्य में उत्सुकता जताने वालों को पुस्तकें देते। जिनसे संपर्क किया जाता, वे पुस्तकें खरीदें या लाइब्रेरी की सदस्यता लेकर पढ़ने के लिए लें, यह उनकी इच्छा पर होता था।

संयम अपना काम उस विचार-प्रवाह के संपर्क में लाना और उससे जोड़ देना भर मानते थे। यह काम करते हुए उन्हें सात वर्ष हो गए थे। मथुरा में हुए विदाई सम्मेलन से पहले ही उन्होंने चल पुस्तकालय शुरू कर दिया था।

स्वर्ण जयंती वर्ष के विशिष्ट साधना क्रम का उन्हें पता चला और उसका विधि-विधान पत्रिका के पन्नों पर पढ़ा तो उमंग उठी कि स्वयं भी इसे अपनाया जाए। कामकाजी जीवन में यह थोड़ा कठिन लगा। ग्यारह बजे तक बाजार से फुरसत मिलती। घर लौटकर दिन भर का हिसाब-किताब करने और उसके बाद सोने की तैयारी में एक-डेढ़ बजता। सुबह साढ़े पाँच-पौने छह बजे तक उठकर तैयार होने और साधना पर बैठने पर कठिनाई महसूस हुई। फिर शाम के लिए ज्ञानरथ का क्रम भी बदलना होगा। इसके लिए संयम का मन इजाजत नहीं दे रहा था। विशेष साधना के लिए अपना नाम प्रस्तावित करें या नहीं? इसी उधेड़बुन में मन विकल हो उठा।

अखण्ड ज्योति के जनवरी, 76 अंक में जिस दिन स्वर्ण जयंती वर्ष का आह्वान पढ़ा, उसी दिन से मन में पुकार उठने लगी। गुरुदेव को संबोधित कर कई बार प्रार्थना की कि कोई रास्ता सुझाएँ। ऐसी व्यवस्था बने कि स्वयं भी विशिष्ट साधकों के इस वर्ग में सम्मिलित हुआ जा सके। मन को समझाने के लिए कई प्रयत्न किए, अपने आप को बार-बार समझाया कि विशेष साधकों में चुना जाना है तो गुरुदेव स्वयं व्यवस्था करेंगे। उसके लिए व्यथित होना या चिंता

करना बेकार है। बार-बार समझाए जाने पर भी मन राजी नहीं हो रहा था।

एक दिन संयम के मन में विचार आया कि ज्ञानरथ स्वयं चलाना बंद कर दें। उसके लिए जिस कार्यकर्त्ता को नियुक्त किया गया है, उसका वेतन पारिश्रमिक पच्चीस-तीस प्रतिशत बढ़ा दें और शाम का बचने वाला समय स्वर्ण जयंती साधना में लगाएँ। इस विचार के उठते ही सवाल उठा कि नियुक्त कार्यकर्त्ता इतना भावनाशील और विचारवान तो होगा नहीं कि नए इलाकों में जाकर लोगों को अपने जैसी लगन और निष्ठा से साहित्य के बारे में बता सके।

यह विचार उठते ही अंतरात्मा ने फटकारा कि अपने आप को ज्यादा भावनाशील मानने का अहंकार क्यों उठ रहा है? वह परिचालक पिछले छह-सात साल से ज्ञानरथ चला रहा है। उसने वेतन पारिश्रमिक बढ़ाने की कभी माँग नहीं की। अपनी तुलना में तो वह ज्यादा उदार और भावनाशील है। अंतरात्मा की इस प्रताड़ना से पहले क्षण भर के लिए यह विचार भी आया था कि अभी काम देख रहे कार्यकर्त्ता को हटा दिया जाए और उसके स्थान पर अधिक शिक्षित, योग्य तथा मिशन से जुड़ा युवक नियुक्त कर लिया जाए। यह विचार भी देर तक नहीं टिक सका। उठते ही ढलती हुई धूप की तरह उतर गया।

मन में कई तरह के संकल्प-विकल्प उठे। उनमें से कोई भी नहीं टिक सका। मन और मस्तिष्क को इस उधेड़बुन ने बुरी तरह थका दिया। दिन भर के काम-काज पूरे होने के बाद रात में सोने की तैयारी की और बिस्तर पर लेटना हुआ तो संयम को 'हर दिन नया जन्म-हर रात नई मौत' के शेष सूत्र का स्मरण आया। इस सूत्र का उत्तरार्द्ध चिंतन आरंभ हुआ था कि मन में दिन भर उठते रहे संकल्प-विकल्पों की याद आई। उनकी समीक्षा करते-करते चेतना ने ज्ञानरथ चलाना छोड़ने के विचार से छलाँग लगाई और मार्च, 1969 में गुरुदेव से हुई भेंट के क्षणों में पहुँच गई।

उस समय गायत्री तपोभूमि मथुरा में नवरात्र-साधना शिविर लगा था। संयम ने भी उसमें हिस्सा लिया था। शिविर के पाँचवें या छठे दिन गुरुदेव ने संयम को अपने पास बुलाया और उसकी निजी पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं, गुत्थियों और आकांक्षाओं के बारे में पूछा। बिस्तर पर पड़े-पड़े दिन भर चले विचारों की समीक्षा करते हुए संयम को मथुरा के शिविर में हुई और बातें तो याद नहीं आईं, गुरुदेव से अपनी साधना-उपासना के बारे में हुई चर्चा का स्मरण हो गया। संयम ने गुरुदेव से कहा था कि साधना-उपासना में नियमितता नहीं बन पा रही है। पढ़ाई-लिखाई और काम-काज में ज्यादा ध्यान अटका रहता है, इसलिए दोनों समय जप-ध्यान नहीं होता। यह नियम सध जाए, ऐसा आशीर्वाद दें।

गुरुदेव ने कहा था कि प्रयत्न करने से नियमितता सधे तो ठीक और नहीं सधे तो तुम्हारी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ। जिन विचारों और संस्कारों में तुम्हारी आस्था सुदृढ़ हुई है, उनका प्रचार करते रहो। यह भी गायत्री माता का और हमारा ही काम है। यह काम करते रहोगे तो तुम्हारी आत्मिक प्रगति के लिए जो भी आवश्यक होगा, उसका उपाय हो जाएगा। यह संवाद याद आते ही संयम की सारी दुविधा दूर हो गई। मन में उठने वाले द्वंद्व मिट गए और आकाश में छाए घटाटोप बादल छट जाने के बाद छिटक उठने वाली चाँदनी की तरह मन और मस्तिष्क में आश्वासन की धारा बिखर गई। अब चिंता की कोई बात नहीं।

## समर्थन और विरोध भी

स्वर्ण जयंती साधना का जो स्वरूप गुरुदेव ने साधकों के सामने रखा था उसमें दैनिक पूजा-उपचार के साथ सोहम् प्राणयोग, गायत्री जप और ध्यान, खेचरी मुद्रा तथा सूर्य अर्घदान की विधियाँ समाविष्ट थीं। उपासना आरंभ करते समय पवित्रीकरण, आचमन आदि षट्कर्म भी पूरे किए जाने थे। साधकों को इस विधान में रंचमात्र भी संदेह नहीं था, लेकिन प्रकाशित होते ही कुछ धर्माचार्यों ने मीन-मेख निकालना शुरू किया। पहली प्रतिक्रिया धर्मसंघ के प्रमुख स्वामी हरिहरानंद की आई। करपात्री जी के नाम से विख्यात इन विभूतिवान् संत ने गुरुदेव द्वारा गायत्री मंत्र को सर्वजन सुलभ बनाने की प्रशंसा की थी। प्रशंसा अब भी की थी, लेकिन उन्हें इस विधान को आने वाले समय में संध्यावंदन की युगीन पद्धति बताए जाने से विरोध था।

गुरुदेव को लिखे पत्र में उन्होंने कहा कि गायत्री मंत्र की उपासना हर कोई करे, हम लोग सिद्धांत रूप में इसके विरुद्ध हैं, लेकिन इस उपासना और संध्याविधि को लोग भूलते जा रहे हैं। समय और विधि का लोप होने लगे तो क्रिया का लोप नहीं होना चाहिए। इस शास्त्रीय मान्यता में विश्वास करते हुए हम लोग आपके प्रयासों की सराहना करते हैं। आपत्ति यह है कि आप नया विधान रचकर उसे

प्रचलित करने के उपक्रम में जुट गए हैं। आपका उद्देश्य कितना ही शुभ हो, लेकिन शास्त्र मर्यादा की अवहेलना तो हो ही रही है। हम लोग असहमति ही नहीं, अपना विरोध भी दर्ज कराते हैं। सनातन धर्म की मर्यादा बनाए रखने के लिए इस उपक्रम को यथाशीघ्र स्थगित करें तो शुभ होगा।

गुरुदेव ने इस पत्र का अत्यंत संक्षिप्त उत्तर दिया। उसमें अपने मत को सही या करपात्री जी के मत को त्रुटिपूर्ण नहीं बताया। सिर्फ इतना ही कहा कि भगवान की जब भी इच्छा होगी, हम आपसे भेंट करेंगे और अपना पक्ष रखेंगे। अपना पक्ष रख चुकने के बाद भी आपको कोई त्रुटि दिखाई दे तो बताइएगा। हम अपना मार्ग बदल देंगे।

गुरुदेव ने यह पत्र स्वयं लिखा था। वेदमाता गायत्री ट्रस्ट के लैटर हेड पर लिखे इस पत्र को पोस्ट करने के लिए उन्होंने माताजी के पास भिजवा दिया। करीब आधा घंटे बाद माताजी ने पत्र के बारे में चर्चा करनी चाही। गुरुदेव ने माताजी की बात सुनी और कहा संदेश प्रासंगिक है। स्वामी जी ने सचमुच उसमें कोई दोष सिद्ध किया तो दिए गए वचन के अनुसार हमें अपना विधान बदलना पड़ेगा। लेकिन निश्चित मानो कि इसकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी। यह हमारा अपना विधान या मानवीय प्रयत्न थोड़े ही है।

पत्र भेज दिया गया। लौटती डाक से करपात्री जी का उत्तर आया। उन्होंने लिखा था कि निकट भविष्य में उनका हरिद्वार आने का कार्यक्रम नहीं है। आप शांतिकुंज छोड़कर अन्यत्र नहीं जाएँगे, इस विषय में हम किसी निष्कर्ष पर कैसे पहुँच सकते हैं ? गुरुदेव ने इस पत्र का तुरंत कोई उत्तर नहीं दिया। इसमें उन्होंने लिखा था कि अब कोई संशय नहीं रहा। आप अपने प्रस्थान बिंदु पर सही हैं। भगवान शंकर की जय हो।

सभी जानते हैं कि करपात्री जी श्रीविद्या के सिद्ध साधक थे। इस विषय में उन्होंने कई ग्रंथ लिखे थे और उनके विवेचन को सभी जगह सराहा गया था। उनकी मान्यताओं को शास्त्रीय आधार पर इतना स्तुत्य माना जाता था कि क्या पारंपरिक और क्या आधुनिक, सभी श्रेणी के विद्वान, मनीषी उनकी पुष्टि करते थे। जिस किसी भी विद्वान, मनीषी ने उनकी सदाशयता को समझा और परखा, उसने सराहा और उसका समर्थन किया। (क्रमशः)

**यूनान का एक विचारक अपने मित्र से बोला—"मैंने लोगों को सच्चाई और सदाचार की शिक्षा देने की योजना बनाई है। विद्यालय के लिए स्थान चुन लिया गया है, पर विद्याध्ययन के लिए विद्यार्थी नहीं मिलते। मित्र व्यंग्य करते हुए बोले—"आप कुछ भेड़ें खरीद लें और उन्हें पढ़ाया करें। आपकी योजना के लिए आदमी मिलना मुश्किल है।"**

**हुआ भी ऐसा ही, कुल दो युवक आए, जिन्हें घरवाले आधा पागल समझते थे और मुहल्ले वाले सिरदरद, किंतु यही दोनों जब बूढ़े विचारक से शिक्षा प्राप्त करके घर लौटे तो इनके व्यवहार व आचार-विचार ने लोगों का मन मोह लिया। फिर तो विद्यालय में इतने विद्यार्थी आए कि विद्यालय विश्वविद्यालय बन गया। पहले के दोनों छात्रों में एक यूनान का प्रधान सेनापति और दूसरा मुख्य सचिव नियुक्त हुआ। यह वृद्ध ही सुविख्यात दार्शनिक जीनो था। उसकी पाठशाला ने जीनो की पाठशाला के नाम से विश्वख्याति अर्जित की। संयम, धैर्य और लगन से अंततः विजय प्राप्त होती ही है।**

# प्लास्टिक-कचरे का उचित नियोजन

देश की राजधानी दिल्ली और देश की आर्थिक राजधानी मुंबई समेत भारत में आठ शहर ऐसे हैं, जिनकी रफ्तार कभी ठहरती व थमती नहीं है, लेकिन विगत दिनों प्लास्टिक का कचरा इनकी रफ्तार के आड़े आया है। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश की अर्थव्यवस्था की दशा-दिशा तय करने वाले ये शहर आज मामूली बारिश भी सहन कर पाने की स्थिति में नहीं हैं। कुछ ही मिनटों में इनके गली-मुहल्ले डूब जाते हैं और जनजीवन ठप्प हो जाता है।

बड़े शहरों की नालियों में लगातार फँसते और बढ़ते प्लास्टिक कचरे को यदि समय रहते नहीं निकाला गया, तो आने वाले समय में यह संकट और भी गहरा सकता है। आज चारों ओर बिखरे प्लास्टिक कचरे के चलते ड्रेनेज सिस्टम ध्वस्त होता जा रहा है और जरा-सी बारिश में बाढ़ जैसी स्थिति पैदा हो रही है।

चार महानगरों (दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई) समेत बेंगलुरू, हैदराबाद, लखनऊ, देहरादून, रांची और पटना की यदि बात करें तो देश की पाँच फीसदी से ज्यादा आबादी इन्हीं शहरों में रहती है। देश की अर्थव्यवस्था को रफ्तार देने में भी ये शहर अहम योगदान दे रहे हैं, लेकिन ये शहर भी अब प्लास्टिक के बोझ तले दबे जा रहे हैं।

प्रश्न उठता है कि आखिर हमारे शहर कितनी बारिश झेल सकते हैं? पहले देश के दो प्रमुख शहरों की बात करते हैं। हर बार जरा-सी बारिश में पानी-पानी हो जाने वाली मुंबई महज 25 मिलीमीटर प्रतिघंटे की बारिश ही झेल सकती है। इसके बाद शहर में नाव चलाने की नौबत आ जाएगी।

इसी तरह देश की राजधानी दिल्ली लगातार 60 मिलीमीटर बारिश को ही झेल सकती है। विगत दिनों प्रकाशित हुई आईआईटी दिल्ली के प्रोफेसर ए0के0 गोसाईं की शोध रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली की ड्रेनेज व्यवस्था को जाम करने का सबसे बड़ा कारण प्लास्टिक कचरा बन चुका है।

प्लास्टिक कचरा-उत्पादन में देश की राजधानी आज सबसे ऊपर है तो वहीं आजादी से पहले कभी देश की राजधानी के रूप में पहचाने जाने वाले कोलकाता में कुल प्लास्टिक कचरे का दसवाँ हिस्सा ही रिसाइकिल हो पाता है। इसी तरह से 'सिलीकॉन वैली' के नाम से मशहूर बेंगलुरू—आईटी सेक्टर की वजह से आज दुनिया भर में मशहूर हो चुका है, मगर विकास के साथ-साथ शहर में प्लास्टिक कचरा भी उसी अनुपात में बढ़ता जा रहा है। इस कारण इसके ड्रेनेज नेटवर्क की क्षमता भी आधी ही रह गई है। सन् 2015 में बाढ़ का दंश झेल चुके चेन्नई के हालात भी ऐसे ही हैं।

दिल्ली प्लास्टिक कचरा पैदा करने में सबसे आगे है। यहाँ 60 मिलीमीटर बारिश से ही जलभराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। 689.52 टन प्लास्टिक कचरा हर रोज देश की राजधानी में पैदा होता है, लेकिन वहाँ पर रिसाइकिल व्यवस्था बेहद ही कमजोर है। 50 माइक्रोन से कम की प्लास्टिक दिल्ली में प्रतिबंधित है, पर इसका कठोरता से पालन नहीं हो रहा है।

इसी तरह मुंबई 25 मिलीमीटर की बारिश ही झेल सकती है। 9400 मीट्रिक टन कचरा यहाँ रोज निकलता है, जिसमें 3 प्रतिशत प्लास्टिक कचरा शामिल है। मुंबई के 1987 किलोमीटर लंबे खुले नालों में से अधिकांश कचरे की वजह से जाम हो जाते हैं। मुंबई में बरसाती पानी की निकास-प्रणाली 525 किमी ही लंबी है, जो निश्चित रूप से अपर्याप्त है।

कोलकाता रिसाइक्लिंग के क्षेत्र में अभी पीछे ही है। यद्यपि कोलकाता के ड्रेनेज सिस्टम में 75 मिलीमीटर बारिश झेलने की क्षमता है, तथापि यहाँ के 4-6 फीसदी इलाकों में जलभराव की समस्या प्लास्टिक कचरे से होती है। यहाँ का 5 फीसदी से ज्यादा कचरा प्लास्टिक से होता है और उस प्लास्टिक कचरे का मात्र दसवाँ हिस्सा ही रिसाइकिल हो पाता है।

बेंगलुरू जैसे बड़े शहर की बात करें तो यहाँ के ड्रेनेज नेटवर्क की क्षमता पहले की तुलना में आधी रह गई है। बेंगलुरू 45 मिलीमीटर की बारिश झेलने में ही सक्षम

है; जबकि किसी समय इसकी क्षमता 80 मिलीमीटर बारिश झेलने की हुआ करती थी। अब यहाँ 4000 टन कचरा रोज पैदा होता है, जिसमें 20 फीसदी कचरा प्लास्टिक का होता है।

चेन्नई महानगर, जिसकी बारिश सहने की क्षमता मात्र 30 मिलीमीटर है। वहाँ की सड़कों से 4500 मीट्रिक टन कचरा हर रोज निकलता है, इसमें 429 मीट्रिक टन से अधिक प्लास्टिक कचरा शामिल होने का अनुमान है। यहाँ रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग होने वाले प्लास्टिक की हिस्सेदारी लगभग 6 प्रतिशत है, जिसका करीब 2 प्रतिशत हिस्सा औद्योगिक प्लास्टिक से आता है।

पटना में हर रोज 1000 मीट्रिक टन कचरा निकलता है, जिसमें 300 मीट्रिक टन प्लास्टिक कचरा होता है। यहाँ 11 हजार कैचपिट और मेनहोल प्लास्टिक फँसने की वजह से अक्सर जाम हो जाते हैं। पटना में एक घंटे की बारिश से ही जलभराव की स्थिति पैदा हो जाती है।

इसी तरह हैदराबाद में हर रोज 4500 मीट्रिक टन कचरा रोज निकलता है। इसमें 5 फीसदी कचरा प्लास्टिक का होता है, जिसका 40 फीसदी कचरा नाले में जाता है, जिससे नाले जाम होने की समस्या सामने आती है। 90 फीसदी नाले प्लास्टिक कचरे की वजह से बंद रहते हैं। यह शहर 30 मिलीमीटर लगातार बारिश ही झेल सकता है और 30 फीसदी नालों से निकली गाद भी प्लास्टिक कचरे के कारण ही है।

लखनऊ के 71 फीसदी नालों में कचरा भरा रहता है। लखनऊ में रोजाना 100-120 टन पॉलीथिन और प्लास्टिक कचरा पैदा होता है। यहाँ 50 फीसदी से ज्यादा शिकायतें नाले जाम होने की होती हैं। यहाँ पर 1500 मीट्रिक टन कचरा हर रोज पैदा होता है। इस शहर में 28 में से 20 प्रमुख नाले कचरे की वजह से जाम हो जाते हैं।

यदि इनके समाधान की सोचें तो प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगाना स्थायी समाधान नहीं है, बल्कि हमें प्लास्टिक कचरे के सकारात्मक इस्तेमाल के उपाय तलाशने होंगे। 'प्लास्टिक मैन' प्रोफेसर राजगोपालन वासुदेवन की इसी सोच ने उन्हें प्लास्टिक कचरे से सड़क निर्माण की विधि खोजने को प्रेरित किया।

सन् 2002 में वासुदेवन ने 'सड़क निर्माण में प्लास्टिक कचरे का इस्तेमाल' नाम का शोधपत्र पेश किया, जिसे देश-विदेश में काफी सराहना मिली। सन् 2004 में वे शोध के उन्नत संस्करण के साथ सामने आए। तमाम देशों ने प्लास्टिक कचरे से सड़क बनाने की वासुदेवन की तकनीक में दिलचस्पी दिखाई। उन्हें मुँहमाँगी कीमत की पेशकश भी की गई, पर उन्होंने अपनी तकनीक भारत सरकार को मुफ्त में सौंप दी।

इस तकनीक के तहत सबसे पहले प्लास्टिक कचरे को समान आकार के बारीक कणों में तोड़ते हैं, फिर उसे 170 डिगरी सेल्सियस तापमान पर गरम किए गए गिट्टी-एस्फाल्ट के घोल में मिलाकर पिघले हुए तारकोल में डालते हैं। इस सामग्री से बेहद मजबूत और टिकाऊ ईको-फ्रेंडली सड़क तैयार होती है, जिसकी निर्माण लागत व रखरखाव का खरच बहुत कम है।

वासुदेवन ने मुदरै के थियागराजर इंजीनियरिंग कॉलेज परिसर में अपनी तकनीक पर आधारित पहली सड़क बनाई। इसके बाद 12 राज्यों के कई छोटे-बड़े शहर प्लास्टिक कचरे से सड़क निर्माण की उनकी विधि अपनाने लगे। सन् 2015 में केंद्र ने 5 लाख से अधिक आबादी वाले शहरों के 50 मीटर दायरे में सड़क निर्माण में प्लास्टिक कचरे के प्रयोग को अनिवार्य कर दिया।

जब मध्य प्रदेश की औद्योगिक राजधानी इंदौर को लगातार दूसरे साल देश का सबसे साफ-सुथरा शहर घोषित किया गया है तो उसके पीछे का कारण प्लास्टिक कचरे पर किया गया बेहतर नियंत्रण ही था। यहाँ कचरा फैलाने का एक बड़ा कारण प्लास्टिक थी। उसके उपयोग पर जुरमाने का प्रावधान किया गया तो लोगों ने उसका इस्तेमाल कम कर दिया।

दुकानदार भी अब यहाँ मानक स्तर की ही पॉलीथिन देने लगे हैं। इंदौर नगर निगम ने सबसे पहले शहर से कचरा पेटियाँ हटाईं। घर-घर से यहाँ कचरा एकत्र किया गया। नगर निगम ने यहाँ ऐसी व्यवस्था बनाई कि दुकानों से रात को कचरा लिया जाने लगा और रात ही में बाजारों की सफाई भी प्रारंभ की गई। इंदौर नगर निगम ने लीक से हटकर 3.3 क्यूबिक मीटर क्षमता वाली कचरा गाड़ियाँ बनवाईं, जो एक हजार घरों से कचरा एकत्रित कर लेने की क्षमता रखती हैं। पहले यह क्षमता 300 घरों तक ही सीमित थी, जो अब एक बड़े भौगोलिक क्षेत्र तक पहुँच चुकी है।

अब इंदौर शहर में सफाई का सिलसिला 24 घंटे चलता है। महिलाएँ गीला और सूखा कचरा अलग करके

नगर निगम को सौंपती हैं। यहाँ बच्चे सफाई के एंबेसेडर बनाए गए हैं, ताकि घरों में सफाई में कमी रहने पर वे बड़ों को भी टोक सकें। स्कूल और कॉलेजों में स्वच्छता समितियों का गठन किया गया है। इस तरह इंदौर शहर का प्रयोग अनेकों के लिए प्रेरणाप्रद है।

यहाँ स्मरण रखने योग्य है कि हाल ही में कनाडा के हैलीफैक्स शहर में प्लास्टिक कचरे की वजह से इमरजेंसी लगानी पड़ी, लेकिन विश्व के कई शहर प्लास्टिक कचरे से निपटने के लिए अनूठे प्रयोग कर रहे हैं। ऐसी ही एक योजना है—प्लास्टिक कचरा लाएँ, मुफ्त में खाना खाएँ। लंदन के 'दि रबिश कैफे' में पसंदीदा चाय, कॉफी या स्नैक्स का लुत्फ उठाने के लिए जेब में पैसे होना जरूरी नहीं है। घर में मौजूद प्लास्टिक कचरे के सहारे भी वहाँ भरपेट खाना खाया जा सकता है, बशर्ते कचरा रिसाइकिल करने योग्य हो।

'ई-कवर' नाम की संस्था ने पृथ्वी पर प्लास्टिक कचरे के बढ़ते बोझ से निपटने को 'दि रबिश कैफे' नाम का रेस्तराँ खोलने की साहसिक पहल की है। महीने में दो दिन चलने वाली इस योजना के तहत इस रेस्तराँ में ग्राहक पैसों की जगह उन दो दिनों में प्लास्टिक कचरे से बिल का भुगतान करते हैं, जिसे बाद में रिसाइक्लिंग प्लांट भेज दिया जाता है। इतना ही नहीं, 'दि रबिश कैफे' 'जीरो-वेस्ट मेन्यू' के सिद्धांत पर चलता है। इसमें सीमित मात्रा में तय पकवान बनाकर 'पहले आओ-पहले पाओ' की नीति के तहत ग्राहकों को परोसा जाता है, ताकि खाना बरबाद न हो।

इसी तरह प्रिंसिपे द्वीप में प्लास्टिक की जगह स्टील की बोतलें मिलती हैं। 'हम आ रहे हैं, आपकी प्लास्टिक की बोतलें बदलने। क्या आपने बोतलें इकट्ठी कर ली हैं?'—अफ्रीका स्थित प्रिंसिपे द्वीप के बायोस्फीयर रिजर्व की टीम हर तीन माह के अंतराल पर इसी घोषणा के साथ द्वीप में दाखिल होती है।

उनके पहुँचते ही द्वीप के मुख्य चौराहों पर बने 'बोतल डिपो' पर लोगों का हुजूम उमड़ पड़ता है। सभी के हाथों में प्लास्टिक की बोतलों से भरे बोरे नजर आते हैं। 50 बोतलें लौटाने पर बायोस्फीयर रिजर्व की टीम स्टील की बोतलें देती है, जिन्हें बार-बार इस्तेमाल किया जा सकता है।

प्रिंसिपे प्रशासन ने द्वीप को प्लास्टिकमुक्त बनाने के इरादे से सन् 2013 में यूनेस्को के साथ 'नो प्लास्टिक' योजना की शुरुआत की थी। वह इसके तहत मार्च, 2021 तक प्लास्टिक की 8 लाख से अधिक बोतलें जुटाने में सफल रहा है।

एक ऐसे ही उदाहरण के रूप में इंडोनेशिया के मलांग प्रांत के बाशिंदे प्लास्टिक कचरा भूलकर भी नहीं फेंकते और फेंकें भी क्यों, जब इसके बदले उन्हें स्वास्थ्य बीमा की सौगात जो मिलती है। सुनकर भले ही यकीन न हो, पर 'इंडोनेशिया मेडिका' नाम का गैरसरकारी संगठन सन् 2010 से मलांग में 'गार्बेज क्लीनिकल इंश्योरेंस' योजना का संचालन कर रहा है।

इसके तहत स्थानीय लोग प्रांत में बनी 'वेस्ट इंश्योरेंस क्लीनिक' में रिसाइकिल करने लायक प्लास्टिक कचरा जमा कराकर स्वास्थ्य बीमा का लाभ उठाते हैं। 4.5 पौंड (लगभग 2 किलो) प्लास्टिक कचरा सौंपने पर उन्हें 10 हजार इंडोनेशियाई रुपये का बीमा दिया जाता है, जो दो बार की सामान्य बीमारी का खरच उठाने के लिए काफी है। बीमे की रकम जुटाने के लिए एनजीओ क्लीनिक में जमा प्लास्टिक कचरा रिसाइक्लिंग प्लांट को बेचता है।

मलेशिया में सोने से कम कीमती नहीं है प्लास्टिक। मलेशिया में इन दिनों प्लास्टिक कचरा जुटाने की होड़ मची हुई है। दरअसल, 'हैलो गोल्ड' नाम के एक स्टार्टअप ने रिजर्व वेडिंग मशीन (आरवीएम) कंपनी 'क्लीन' के साथ मिलकर अनोखी 'ई-गोल्ड' योजना की शुरुआत की है। इसके तहत प्लास्टिक की बोतलें और टिन के कैन जमा करने पर ग्राहकों के खाते में 'ई-गोल्ड' डाला जाता है। 'ई-गोल्ड' को उस दिन के सोने की कीमत के हिसाब से भुनाया जा सकता है।

योजना का लाभ उठाने के लिए 'हैलो गोल्ड एप' डाउनलोड कर एक अकाउंट बनाना होता है, फिर देश भर में लगी 500 'क्लीन आरवीएम' मशीनों में प्लास्टिक की बोतल डालने पर खाते में 'ई-गोल्ड' जुड़ता जाता है। 'हैलो गोल्ड' एक प्लास्टिक की बोतल या टिन के कैन के बदले 0.00059 ग्राम सोने के बराबर 'ई-गोल्ड' की पेशकश कर रहा है। विश्व भर में ऐसे अनेकों प्रयास हैं, जो प्लास्टिक कचरे के प्रबंधन के लिए किए जा रहे हैं, जिनको आधार बनाकर इसका सम्यक समाधान किया जा सकता है। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 153

# यज्ञधूम्र पर शोध अध्ययन

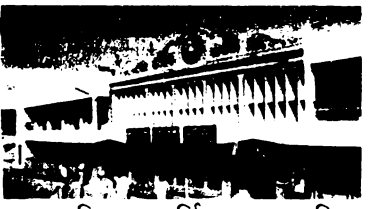

यज्ञ को वैदिक ऋचाओं में सृष्टि का केंद्र कहा गया है। वैदिक ज्ञान के अनुसंधानकर्त्ता ऋषियों ने मानवता के विकास एवं कल्याण के लिए जिस जीवनपद्धति का निर्माण किया है, उसमें यज्ञ को जीवन के पर्याय के रूप में समाहित करते हुए जीवनचर्या के प्रत्येक छोटे-बड़े कार्यों को यज्ञीय भावना से करने का निर्देश किया। ऋषिप्रणीत इस दिव्य यज्ञीय परंपरा का भारतीय संस्कृति से पोषित समाज में बहुरूपों में प्रचलन रहा है।

शास्त्रों में भी ज्ञानयज्ञ, सेवायज्ञ, प्राणयज्ञ आदि अनेक रूपों में यज्ञ की महत्ता का उल्लेख मिलता है। यज्ञ के तात्त्विक स्वरूप एवं लाभ की दृष्टि से जीवन का प्रत्येक आयाम, संसार और सृष्टि का संचालन—सब कुछ यज्ञीय प्रक्रिया के रूप में ही क्रियान्वित है। लौकिक दृष्टि से भी यज्ञ संपूर्ण जीवन को पोषित, संरक्षित और संवर्द्धित करने वाली सर्वोत्तम विधा है।

सामान्यतया लोग यज्ञ का तात्पर्य उसके लौकिक स्वरूप में दिखाई देने वाले क्रियाकलापों, जैसे—अग्निहोत्र, हवन आदि के रूप में समझते हैं। यज्ञ के इस लौकिक पक्ष का भी अद्भुत ज्ञान-विज्ञान है। ऋषि-परंपराओं में हवन, अग्निहोत्र आदि की प्रक्रिया प्राचीनकाल से ही जीवनचर्या एवं उपासनापद्धति का अभिन्न हिस्सा रही है। हवन की क्रिया सिर्फ एक वैदिक कर्मकांड ही नहीं है अपितु इसमें अग्नि, औषधि, मंत्र और भावना आदि की समन्वित ऊर्जा का ज्ञान-विज्ञान समाहित है; जो जीवन, प्रकृति और पर्यावरण में सामंजस्य, संतुलन तथा संवर्द्धन की प्रक्रिया को अबाध बनाए रखने में सक्षम है।

वर्तमान समय में यज्ञ की इस पावन परंपरा को बनाए रखना तथा इसमें सन्निहित ऋषियों के अनुसंधानपरक ज्ञान-विज्ञान को सामने लाकर जनसामान्य के बीच यज्ञ की महत्ता और उपयोगिता को प्रस्तुत करने की अत्यंत आवश्यकता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में इस दिशा में व्यापक स्तर पर शोध-अनुसंधान, प्रयोग एवं अध्ययन-अध्यापन के कार्य को संपन्न किया जा रहा है।

यज्ञ विज्ञान के आध्यात्मिक, धार्मिक, व्यावहारिक, पर्यावरणीय पहलुओं के साथ-साथ एक उपयोगी चिकित्सापद्धति के रूप में भी यहाँ ठोस कार्य किए जा रहे हैं। इस क्षेत्र में होने वाले विशिष्ट शोध-अनुसंधानों की जानकारी समय-समय पर पाठकों तक पहुँचती रही है। इसी क्रम में यज्ञ-विज्ञान एवं यज्ञ चिकित्सा के संदर्भ में सन् 2017 में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न हुए शोध अध्ययन की संक्षिप्त जानकारी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

यह शोध अध्ययन शोधार्थी रुचि सिंह द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्राच्य अध्ययन विभाग के अंतर्गत (रसायन विज्ञान विषय) पूरा किया गया। इस विशिष्ट शोधकार्य को शोधार्थी ने श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं प्रो0 ए0एन0 गर्ग के निर्देशन में पूरा किया है। प्रायोगिक, विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक विधि पर आधृत इस अध्ययन का विषय है—**'स्टडी ऑफ केमिकल कॉंस्टिट्यून्टस ऑफ यज्ञ मटीरियल एंड इट्स फ्यूम्स।'** इस अध्ययन को कुल सात अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है—

**प्रथम अध्याय—विषय प्रवेश** है। इसके अंतर्गत यज्ञ की उत्पत्ति एवं सैद्धांतिक आधार की विवेचना करते हुए यज्ञ में उपयोग होने वाली हवन सामग्री एवं आठ प्रमुख आयुर्वेदिक औषधियों की जानकारी एवं उनके महत्त्व को प्रस्तुत किया गया है। वैदिक ऋषियों ने यज्ञ को एक ऐसी प्रणाली के रूप में विकसित किया जिससे व्यक्तिगत, सामूहिक और समस्त प्राणिमात्र का कल्याण संभव हो सके।

यज्ञ के भौतिक, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक लाभ की दृष्टि से इस विधा के अनेक प्रकारों का उल्लेख वैदिक शास्त्रों में हुआ है। यज्ञीय प्रक्रिया में स्वाभाविक रूप से अनेकों लाभ प्राप्त होते हैं। इसके विज्ञान को जानने-समझने के लिए वेदों के साथ-साथ ब्राह्मण ग्रंथ, आयुर्वेदिक ग्रंथ, विशेषकर चरकसंहिता और भावप्रकाश निघंटु में विस्तृत विवेचना प्राप्त होती है। औषधीय विज्ञान की दृष्टि से यज्ञ में उपयोग होने वाली हवन सामग्री अनेक औषधीय विशेषताओं

से युक्त होती है। यज्ञ में अग्नि प्रज्ज्वलित करने के लिए जो काष्ठ (लकड़ियाँ) प्रयुक्त की जाती हैं, उनका भी विशेष महत्त्व होता है।

इस अध्याय में हवन सामग्री में उपयोगी औषधियों का वैज्ञानिक रीति से तथ्यात्मक विवेचन किया गया है। इनमें प्रमुख हैं—आम की लकड़ी, गिलोय, चंदन लकड़ी, नागरमोथा, कपूर-कचरी, बेल, देवदार, जटामांसी। शोधार्थी ने हवन सामग्री के उक्त प्रमुख घटकों की रासायनिक और औषधीय विशेषताओं का विस्तार से विवेचन किया है। इस वैज्ञानिक शोध में यज्ञोपैथी के माध्यम से जीवन और प्रकृति के सामंजस्य, समाधान और समग्रता को समाहित करते हुए शोधार्थी ने अपने विषय की वैश्विक आवश्यकता और महत्ता को भी उजागर किया है।

**द्वितीय अध्याय है—शोध प्रविधि एवं उपकरण।** इस अध्याय में पौधों के उन भागों को, जो अध्ययन में सम्मिलित थे, उन्हें कैसे एकत्रित एवं संरक्षित किया गया तथा उनके उपयोग के पूर्व इस संदर्भ में बरती जाने वाली सावधानियों एवं तथ्यात्मक परिणामों की विवेचना की गई है। इसके साथ ही हवन सामग्री में प्रयुक्त औषधियों की गुणवत्ता को बनाए रखने तथा उनकी प्रभावकारिता के स्तरीकरण के लिए जिन उपकरणों का प्रयोग किया गया, उनका भी विस्तार से विवेचन करते हुए महत्त्वपूर्ण आँकड़ों को सारणी बनाकर व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया है।

**तृतीय अध्याय है—क्रोमेटोग्राफिक विश्लेषण।** इसके अंतर्गत हवन सामग्री के धुएँ की रासायनिक तत्त्वों के साथ अंतर्क्रिया के फलस्वरूप प्राप्त परिणामों एवं विशेषताओं का विवेचन किया गया है। यज्ञ एक धार्मिक क्रिया होने के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टि से चिकित्सकीय विद्या के रूप में भी आश्चर्यजनक रूप से प्रभावकारी विधि है। इसमें उपयोग होने वाली प्रत्येक औषधि की एक विशेष रासायनिक संरचना है, जिसका प्रभाव धुएँ के माध्यम से बाह्य जीवन एवं पर्यावरण-वातावरण पर पड़ता है। हवन सामग्री में प्रयुक्त औषधियों में अंतर्निहित रासायनिक विशेषताओं का विश्लेषण एवं विवेचन इस अध्याय को विशिष्ट बनाता है।

**चतुर्थ अध्याय है—तात्त्विक विश्लेषण।** ऐसे तत्त्व जो वनस्पति और प्राणिजगत् के विकास, स्वास्थ्य और संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जैसे कॉपर, जिंक, मैग्नेशियम, आयरन आदि—इस अध्याय में हवन सामग्री की उन औषधियों की तात्त्विक विशेषताओं का वैज्ञानिक अध्ययन व विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यज्ञ की पवित्र अग्नि में चंदन, आम, गिलोय जैसी दिव्य औषधियों के जलने से वातावरण की पवित्रता, स्वच्छता और साथ में औषधीय व चिकित्सकीय लाभों का स्पष्ट विवेचन इस अध्याय के तथ्यात्मक परिणामों के आधार पर किए जाने से यज्ञोपैथी के वैज्ञानिक पक्ष को सुदृढ़ आधार प्राप्त होता है।

**पंचम अध्याय है—प्रतिउपचारात्मक प्रक्रिया।** इस अध्याय के अंतर्गत हवन सामग्री की औषधियों की ऐंटीऑक्सिडेंट गतिविधियों और उसके सकारात्मक पहलुओं की वैज्ञानिक विधि से विवेचना प्रस्तुत की गई है। हमारे जैविक और मानसिक संसार के अंतर्संबंधों को बनाए रखने तथा सुचारु रूप से उनके संचालन में ऑक्सीजन व इसके जैसे अन्य सूक्ष्मगैसीय घटक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिनके असंतुलन से शरीर व मन कई स्तरों पर प्रभावित होता है। ऐसी समस्याओं एवं रोगों पर यज्ञोपैथी प्राकृतिक रूप से सकारात्मक प्रभाव डालती है।

**षष्ठ अध्याय है—सूक्ष्मजीवरोधी गतिविधि।** वनस्पतियों की चिकित्सकीय विशेषताओं का लाभ प्राचीन काल से मानव जाति ले रही है। वर्तमान में पारंपरिक और आधुनिक दोनों चिकित्सा प्रणालियाँ औषधीय पौधों की उपचारात्मक विशेषताओं को स्वीकारते हुए उपयोग करती हैं।

यज्ञोपैथी में इन औषधियों का एक नया पक्ष धुएँ के माध्यम से उपचार का सामने आता है। इस अध्याय में हवन सामग्री के धुएँ का हानिकारक सूक्ष्मजीवों पर किस प्रकार से सकारात्मक प्रभाव पड़ता है एवं इनसे संबंधित समस्याओं को हम यज्ञ के माध्यम से किस प्रकार ठीक कर सकते हैं और रोगप्रतिरोधक क्षमता के संतुलन में यज्ञ की क्या महत्ता है—ऐसे महत्त्वपूर्ण उपादेयी पहलुओं का विस्तृत विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत हुआ है।

**सप्तम अध्याय है—यज्ञ एवं बिना यज्ञ धुआँ—दोनों का प्रयोगात्मक एवं तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन।** हवन सामग्री में प्रयुक्त औषधीय पौधों के तत्त्वों में विशिष्ट रासायनिक विशेषताएँ होती हैं, जो उनके उपचारात्मक प्रभाव को निर्धारित कर सकारात्मक परिणाम लाती हैं; जबकि सामान्य धुएँ में ऐसी किन्हीं औषधीय विशेषताओं के न होने से उनके लाभ अथवा दुष्परिणामों का आकलन पूर्व निर्धारित नहीं किया जा सकता है। इस अध्याय में यज्ञीय धुएँ एवं

साधारण धुएँ का वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से प्रयोगात्मक अध्ययन कर यज्ञ के धुएँ की बहुआयामी विशेषताओं और महत्त्व को प्रस्तुत किया गया है।

यह अध्ययन यज्ञोपैथी के क्षेत्र में एक नया अध्याय एवं मील का पत्थर साबित हो सकता है; क्योंकि इसमें यज्ञीय प्रक्रिया के व्यावहारिक और अत्यंत उपादेयी पक्षों तथा चिकित्सकीय महत्त्व को पूर्णत: प्रयोगात्मक और वैज्ञानिक पद्धति से प्रस्तुत करते हुए आधुनिक समय में यज्ञ जैसी प्राचीन विधा को, उसकी व्यापक प्रभावशीलता के साथ सामने लाने का सफल प्रयास किया गया है। ❑

**कौरवों से द्यूतक्रीड़ा में हारने के बाद पांडवों को वनवास जाना पड़ा। पांडव वन में रह रहे थे कि उन्हें नीचा दिखाने के उद्देश्य से दुर्योधन दल-बल के साथ वन में पहुँचा। उन्हें यह जताने के लिए कि वह कितने राजसी ठाठ-बाट से सुसज्जित है, उसने वन में आखेट का आयोजन किया। आखेट के क्रम में दुर्योधन के सैनिकों एवं भाइयों ने वन में निवास करते एक यक्ष की भार्याओं से दुर्व्यवहार कर दिया। अपनी पत्नियों के साथ हुए इस दुराचरण से यक्ष क्रोधित हो उठा और उसने दुर्योधन की समस्त सेना को पराजित कर दुर्योधन को बंदी बना लिया।**

**इस घटना का पता जब पांडवों को चला तो युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा—"हमें अपने भाई दुर्योधन की सहायता करनी चाहिए। इस समय वह संकट में है।" भीम एवं अर्जुन इस निर्देश से सहमत न थे। दोनों ने एक स्वर में कहा—"दुर्योधन हमारा शत्रु है। ठीक है कि वह हमारा भाई है, पर आज तक उसने कौन-सा भ्रातृधर्म निभाया है। आज हम लोग इस वनवास पर उसी की वजह से हैं। उसे मरने के लिए ही छोड़ देना चाहिए।"**

**युधिष्ठिर ने कहा—"बंधुओ! यह ठीक है कि दुर्योधन के मन में हमारे प्रति कलुष है और उसने इसे प्रमाणित करने का कोई अवसर आज तक छोड़ा नहीं है, परंतु यह भी सत्य है कि वह हमारा भाई है। एक छत के नीचे हमारे बीच मतभेद हो सकते हैं, परंतु बाहरी शत्रु के सामने हमें एक परिवार के रूप में दिखना चाहिए, नहीं तो आपसी मतभेद का लाभ दूसरे लोग उठाते हैं।" शेष पांडव धर्मराज की इस बात से सहमत हुए। सबने साथ मिलकर यक्ष से युद्ध किया और दुर्योधन को छुड़ा लाए। पांडवों के व्यवहार ने दुर्योधन को पारिवारिकता का पाठ पढ़ा दिया।**

# अनमोल संपदा है जल

इन कहावतों को हम सब अक्सर ही सुनते हैं—'जल ही जीवन है।' 'बिन पानी सब सून।' इन कहावतों का आशय यह है कि पृथ्वी पर जीवन का आधार यहाँ मौजूद जल ही है। इसके अभाव में पूरी धरती एक रेगिस्तान में तब्दील हो जाएगी। हम भाग्यशाली हैं कि इस ब्रह्मांड में पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा ग्रह है, जो जल संपदा से परिपूर्ण है, लेकिन हम इनसानों की नासमझी के कारण यह जल संपदा दिनोदिन न सिर्फ कम होती जा रही है, बल्कि प्रदूषित भी होती जा रही है। इस संपदा पर आज संकट के बादल मँडरा रहे हैं।

जल पर जीवन निर्भर है, इसलिए यह कह सकते हैं कि इसके साथ हमारा जीवन भी संकटग्रस्त होता जा रहा है। यह खतरा दिन-प्रतिदिन गहराता जा रहा है और भविष्य में इसके और भी गहराने के आसार दिख रहे हैं। समय रहते इससे निजात पाने के लिए जल संरक्षण को एक जनआंदोलन बनाने की आवश्यकता है। पानी की यह समस्या जलवायु-परिवर्तन के प्रभाव के चलते और गहरा गई है। आजकल मानसून में देरी की एक वजह बढ़ता प्रदूषण और इसके चलते हुआ जलवायु-परिवर्तन भी है।

देश में जल के गहराते संकट को देखते हुए सरकार ने 'जल शक्ति मंत्रालय' का गठन किया है। सरकार ने ग्राम स्वराज्य के तहत यह घोषणा की है कि वह सन् 2024 तक सभी घरों में शौचालय के साथ-ही-साथ प्रत्येक घर को 'नल से जल' की आपूर्ति सुनिश्चित करेगी। सवाल यह उठता है कि घरों में जल की आपूर्ति के लिए वह जल कहाँ से लाएगी? क्या घरों में जलापूर्ति के लिए सरकार भी बोरिंग कर भूमिगत जल का ही उपयोग करने वाली है। यह सवाल इसलिए; क्योंकि देश के कुछ हिस्सों में भूमिगत जल का स्तर विगत चार दशकों में 20 से 50 फीट तक नीचे चला गया है।

देश के कई ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ अप्रैल आते-आते ताल-तलैया के साथ-ही-साथ हैंडपंप भी सूख जा रहे हैं। इसके तात्कालिक उपाय के रूप में राज्यों की सरकारें हैंडपंप की गहराई बढ़ाती जा रही हैं, पर चूँकि भूगर्भ जल तेजी से नीचे जा रहा है, अत: पेयजल का संकट दिन-प्रतिदिन गहराता जा रहा है। देखा जाए तो तीन तरफ से समुद्र और उत्तर में हिमालय से घिरे राष्ट्र के समक्ष आज जो जल संकट पैदा हुआ है, वह हमारी अपनी ही देन है।

वास्तव में हमने जल संरक्षण के अपने पारंपरिक तौर-तरीकों को भुला दिया है। गाँवों में आज भी यह कहावत प्रचलित है—'ऊपर का जल ऊपर के लिए और नीचे का जल पीने के लिए।' अर्थात दैनिक नित्यकर्म जैसे कि शौच, स्नान, कपड़े धोने, पशुओं और कृषिकार्य हेतु वर्षा के जल का उपयोग किया जाता था और खाना बनाने एवं पीने के लिए भूमिगत जल का, जो कुओं से निकाला जाता था। वर्षा जल के संग्रह के लिए बावड़ी, तालाब आदि थे, जिनकी देख-भाल की जवाबदेही सभी की हुआ करती थी। हिमालय से निकलने वाली नदियों में भी साल भर शुद्ध जल का प्रवाह पर्याप्त मात्रा में रहता था।

एक समय हिमालय पर बरगद, पाकड़, जामुन, महुआ आदि फलदार और जड़दार पेड़ होते थे, जो अपनी जड़ों से मिट्टी को बाँधे रहते थे। वर्षा के समय इन्हीं वृक्षों की जड़ों के कारण बारिश का पानी हिमालय में रुका रहता था और फिर धीरे-धीरे रिसते हुए नदियों में बहता रहता था, लेकिन अँगरेजों ने रेलवे की पटरी के लिए वैसे वृक्षों को हिमालय में विकसित किया, जो रेलवे की पटरी के लिए काम तो आते थे, पर उनकी छाया के नीचे घास भी पैदा नहीं होती थी।

हमारी उपेक्षा और वनों की अंधाधुंध कटाई से हिमालय में धीरे-धीरे जड़दार वृक्ष खतम हो गए। परिणाम हमारे सामने है। वर्षा के समय जल के साथ ही हिमालय से मिट्टी और गाद के कारण नदियों में सिल्ट की समस्या पैदा हो रही है। नदियों में जल-प्रवाह और जल की मात्रा में तेजी से कमी आ गई है। जल-प्रवाह घटने और नगरीय संस्कृति के प्रभाव में सीवरेज और गंदे जल को प्रवाहित करने से नदियाँ इतनी प्रदूषित हो गई हैं कि मनुष्य की बात तो दूर पशु-पक्षी भी उस जल का उपयोग नहीं करते।

जल संकट का दूसरा सबसे बड़ा कारण है आधुनिकता और सुविधायुक्त हमारी जीवनशैली। एक व्यक्ति शौच और लघुशंका के लिए जब-जब शौचालय जाता है, तब-तब फ्लश चलाता है। इस दौरान वह लगभग 4-5 लीटर शुद्ध पानी को गंदे नाले में बहा देता है। प्रति व्यक्ति यह बरबादी कम-से-कम 30-35 लीटर प्रतिदिन तो है ही। पहले नदी या तालाब में स्नान करने के साथ-ही-साथ वहाँ कपड़े भी धो लिए जाते थे। आजकल घरों में वॉशिंग मशीन आ गई है। वॉशिंग मशीन में कितने जल का इस्तेमाल होता है, इसका कोई हिसाब नहीं। पेयजल के लिए घरों में लगी 'आरओ' मशीन एक लीटर पानी साफ करती है और आधा लीटर बेकार बहाती है।

देश में उत्पन्न जल संकट का एक और बड़ा कारण है बोरिंग। आज गाँवों से लेकर शहरों तक में बोरिंग के माध्यम से भूमिगत जल का तेजी से दोहन हो रहा है। सरकारें भी कृषिकार्य के लिए किसानों को बोरिंग पर सब्सिडी दे रही हैं। बोरिंग के कारण घटते भूमिगत जलस्तर का प्रभाव पेयजल के लिए लगाए गए हैंडपंप और कुओं पर पड़ रहा है।

हालाँकि इधर के वर्षों में भूमिगत जल को 'रीचार्ज' करने और 'अपशिष्ट' जल के पुनर्प्रयोग पर ध्यान दिया जा रहा है, पर समस्या के समाधान की दृष्टि से यह ऊँट के मुँह में जीरे के समान है। जल संरक्षण के लिए सरकार को सबसे पहले बोरिंग के उपयोग के बारे में कोई नीतिगत निर्णय लेना होगा। कृषि के लिए नहर, तालाब या अन्य विकल्पों की तलाश करने के साथ ही दैनिक जीवन में आए परिवर्तन के कारण बरबाद हो रहे जल के पुनर्प्रयोग की योजना को कड़ाई से लागू करना होगा, वरना यह संकट जल्द ही 'जल युद्ध' का रूप अख्तियार कर सकता है। अत: हमें समय रहते सावधान एवं सतर्क हो जाने की जरूरत है। ❑

**जेतवन में एक किसान रहता था। वह भीषण गरमी में भी अपने खेतों में काम करता रहता। भगवान बुद्ध प्रातः भ्रमण करते हुए उधर से निकलते तो किसान विनम्रता से उन्हें प्रणाम करता। बुद्ध उसकी विनम्रता व सात्त्विकता से अत्यंत प्रभावित हुए। प्रायः प्रतिदिन वे वहीं रुककर उसे उपदेश देने लगे। कुछ दिनों बाद किसान की फसल पककर तैयार हुई तो उसने विचार किया कि भगवान बुद्ध के उपदेश से उसे बहुत शांति मिली है, इसलिए वह अपनी फसल का चौथाई भाग भगवान बुद्ध को भेंट करेगा। उसी रात अचानक तेज बारिश आई और सारी फसल बह गई। किसान ने यह देखा तो शोक में डूब गया। दूसरे दिन जब बुद्ध वहाँ पहुँचे तो शोकग्रस्त किसान उन्हें देखकर रो पड़ा और बोला—"मुनिवर! मैं फसल नष्ट हो जाने से शोकाकुल नहीं हूँ, वरन मुझे इस बात का दुःख है कि मैंने फसल का चौथाई भाग आपको देने का संकल्प किया था। उस संकल्प की पूर्ति नहीं हो पाई।" बुद्ध बोले—"वत्स! तुमने संकल्प करके ही पुण्य अर्जित कर लिया है। मैं तो वैसे भी अन्न या धन का संग्रह नहीं करता।" वे उसे ढाढ़स बँधाते समझाने लगे—"प्राकृतिक आपदा में धैर्य न खोना ही कल्याण का मार्ग है। निष्काम कर्म इसी को कहते हैं।" यह सुनकर किसान शोकरहित हो गया और पुनः पुरुषार्थ करने में जुट गया।**

# वृक्षारोपण हमारा पुनीत कर्तव्य

वृक्ष जीवन के आधार हैं, इस सृष्टि के शृंगार हैं। ये मौन तपस्वी की भाँति कार्बन-डाइऑक्साइड और अन्य विषैले तत्त्वों को अवशोषित करते हैं तथा ऑक्सीजन एवं शुद्ध वायु को वायुमंडल में छोड़ते हैं। प्राणवायु के स्रोत के रूप में इनकी भूमिका अतुलनीय है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि वृक्षों से जुड़े ऐसे स्थल स्वास्थ्यवर्द्धक सेनिटोरियम के रूप में विकसित किए जाते हैं और इनसान ही नहीं, जीव-जंतु भी इनकी छत्रछाया में शांति को अनुभव करते हैं और स्वास्थ्य लाभ पाते हैं।

वृक्ष से हीन किसी स्थल में शायद ही कोई जीव अपनी पसंद से रहना चाहे। कंकरीट के जंगल में तब्दील हो रही बस्तियों व शहरों में रह रहे लोग बता सकते हैं कि किस तरह वे जीवन की सारी सुख-सुविधाओं के होते हुए भी एक दम-घोंटू नारकीय जीवन जीने के लिए विवश अनुभव करते हैं; जबकि हरे-भरे वृक्षों से सुशोभित स्थल पर मन प्रफुल्लित होता है, इनकी शीतल छाँह तले जीवन कैसे शांति-सुकून की गोद में साँस ले रहा होता है।

आश्चर्य नहीं कि दूरदर्शी योजनाकार शहरों में हरे-भरे पार्क से लेकर उद्यानों को ऑक्सीजन पॉकेट के रूप में तैयार करते हैं, जो फिर बड़े शहरों के लिए फेफड़ों का काम करते हैं। वायु ही नहीं ये ध्वनि एवं भू-प्रदूषण को भी नियंत्रण करने में सहायक होते हैं। साथ ही गरम वायुमंडल में ठंढक प्रदान करते हैं। पाया गया है कि वृक्षों से मिलने वाली ठंढक से 50 प्रतिशत तक एयर कन्डिशनर की आवश्यकता को कम किया जा सकता है।

इसके साथ ही वृक्षों से उपलब्ध फल-फूल, आहार एवं औषधियाँ जीवन का आधार हैं। इनसान ही नहीं, हर प्राणी इनसे पोषण पाता है। मानव को जहाँ इनसे नाना प्रकार के फल, अन्न एवं जीवनदायिनी औषधियाँ मिलती हैं तो वहीं प्रकृति की गोद में विचरण कर रहे जीव-जंतु तो पूर्णतया इन्हीं पर निर्भर होते हैं और इनके आश्रय में रहकर जीवनयापन करते हैं। इन्हीं वृक्षों की टहनियों से लेकर कोटरों में इनके प्राकृतिक आवास होते हैं।

बिना वृक्षों के प्रकृति की इस आश्रयदायी व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जहाँ वनों का बेतहाशा कटाव हो रहा है, प्रकृति का निर्बाध रूप से दोहन एवं शोषण हो रहा है, वहाँ कितनी ही प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी हैं व कितनी ही विलुप्त होने के कगार पर हैं। अधिकाधिक वृक्षों के रोपण व वनों के संरक्षण के आधार पर ही मानवीय सभ्यता को इस त्रासदी से बचाया जा सकता है और धरती के भविष्य को सुरक्षित किया जा सकता है।

वृक्षों से आच्छादित धरती का आवरण जलवायु निर्माण एवं पर्यावरण संरक्षण का एक बड़ा आधार है। घने जंगल आकाश में मँडरा रहे बादलों को आकर्षित करते हैं और वर्षा का कारण बनते हैं और ऐसे वन जैव-विविधता के समृद्ध स्रोत होते हैं। हरियाली का यह कवच पृथ्वी में जलवायु नियंत्रण से लेकर पर्यावरण शोधन में महती भूमिका निभा रहा है और बारिश में भूस्खलन से लेकर बाढ़ आदि को नियंत्रित करता है।

पिछले दशकों में वनों के अंधाधुंध कटाव एवं अनियोजित विकास कार्यों के चलते विकराल बाढ़ से लेकर बादल फटने की घटनाएँ बढ़ी हैं और भारी तबाही का कारण बन रही हैं। पहाड़ों में भूस्खलन और इससे उपजी लोमहर्षक दुर्घटनाओं का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा है। सन् 2021 की बरसात में इसका भयंकर स्वरूप अपने चरम पर दिखा है और आगे के लिए सँभलकर चलने की चैतावनी देता प्रतीत हुआ है।

वृक्ष ही भूमि की उर्वरता से लेकर कृषिकार्य को सफल बनाने में अपना उल्लेखनीय योगदान देते हैं। इनके साथ जहाँ बंजर भूमि उपजाऊ हो जाती है तो वहीं रेगिस्तान के प्रसार पर नियंत्रण हो जाता है और भूमि के जलस्तर में भी वृद्धि होती है। मैदानों में भूमि का गिरता जलस्तर और पहाड़ों में सूखते प्राकृतिक जल-स्रोतों को एक सीमा तक वृक्षारोपण के साथ हल किया जा सकता है। वहाँ के समझदार लोगों व नीति-निर्माताओं का कार्य बनता है कि वे ऐसे पेड़ अधिकाधिक मात्रा में लगाएँ, जो वायुमंडल एवं पृथ्वी में

जल को निस्सृत करते हों और साथ ही ऐसे वृक्षों से बचें, जो जल का अवशोषण करते हों व भूमि को बंजर बनाते हों।

इसके साथ वृक्ष आर्थिकी के एक बड़े स्रोत हैं। ये ईंधन से लेकर इमारती लकड़ियाँ हमें देते हैं व कितने ही उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं। कागज उद्योग बहुत कुछ वृक्षों पर टिका हुआ है। वन्य संसाधनों से जुड़े उद्योग रोजगार का साधन बनते हैं और वृक्षों से प्राप्त विविध उत्पाद राष्ट्रीय आय में वृद्धि करते हैं।

निस्संदेह रूप में हरी चादर के रूप में वृक्ष इस धरा के शृंगार हैं, जो किसी भी स्थान के प्राकृतिक सौंदर्य में चार चाँद लगाते हैं। इस तरह से ये पर्यटन का आधार हैं व पथिकों के लिए अपनी शीतल छाया के साथ शांति के आगार हैं। यह एक सुखद तथ्य है कि प्रकृति के संरक्षण के साथ जुड़े ईको टूरिज्म का चलन बढ़ा है। वृक्षों के सुनियोजित रोपण के साथ समृद्ध हो रही प्रकृति के आँचल में ऐसे पर्यटन को बढ़ावा दिया जा रहा है। अपने प्रशांतक स्वभाव के कारण वृक्ष तनाव को भी कम करने में बहुत सहायक होते हैं। इस तरह मानसिक स्वास्थ्य में इनके योगदान को समझा जा सकता है।

आध्यात्मिक रूप में वृक्ष मनुष्य जाति के शिक्षक हैं। बिना कुछ आशा-अपेक्षा के सिर्फ देने का भाव जहाँ इनका स्वभाव है, वहीं फलों से लदने पर इनका झुक जाना मानव को गुणवान बनने व विनम्र रहने की मौन प्रेरणा देता है। इसके साथ कार्बन-डाइऑक्साइड से लेकर अन्य प्रदूषण को अवशोषित कर चारों ओर प्राणदायी वायु के विसर्जन का उदार एवं तपस्वी शिवस्वरूप जीवन सबको एक मूक शिक्षण देता है।

इतने गुणों को देखते हुए, वृक्षारोपण करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य बनता है। जितना अधिक हम इस धरा को इनकी हरी चूनर औढ़ा सकें, उतना ही हमारे लिए हितकर होगा। गायत्री परिवार का 'पर्यावरण संरक्षण एवं हरीतिमा संवर्द्धन' कार्यक्रम इस दिशा में एक अनुकरणीय सृजनात्मक अभियान है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा इस क्षेत्र में एक अभिनव प्रयास करते हुए हर स्नातक को शिक्षा प्राप्त करने के साथ पाँच वृक्षों के रोपण की शपथ दिलाई जाती है। यह एक अच्छी पहल है, जिसका यदि हर विश्वविद्यालय अनुकरण कर सके तो यह सामूहिक रूप में एक बहुत बड़ा कार्य साबित होगा। ❑

**सिख संप्रदाय के चौथे गुरु श्री रामदास के अनेक शिष्य थे। सभी की अपनी-अपनी विशेषताएँ थीं। उन्हीं शिष्यों में एक थे—गुरु अर्जुन देव। अर्जुन देव ने गुरु से दीक्षा लेकर आश्रम में प्रवेश किया तो उन्हें बरतन माँजने का काम सौंपा गया। वे सवेरे से शाम तक बरतन माँजते या आश्रम के अन्य कार्य करते। अन्य शिष्य धर्मचर्चा और गुरुपूजा में लगे रहते तो भी अर्जुन देव गुरु के आदेशानुसार अपने नियत कर्म में लगे रहते। गुरु के अवसान का समय आया। गुरु अपना घोषणापत्र लिखकर गए थे। सभी अपनी बड़ी-बड़ी योग्यताओं के कारण सोचते थे कि उन्हें ही उत्तराधिकार मिलेगा, परंतु घोषणापत्र खुलने पर उन्होंने अर्जुन देव को उत्तराधिकारी चुना था। सुनने वालों ने आश्चर्य किया कि इस सबसे कम योग्यता वाले व्यक्ति को यह पद कैसे मिला? समाधान करने वालों ने समझाया कि सेवा, श्रद्धा और अनुशासन यही शिष्य की सबसे बड़ी योग्यता है। अर्जुन देव सिख धर्म के पाँचवें गुरु हुए और उन्होंने अपनी श्रद्धा के बल पर सिख धर्म की महती सेवा की।**

युगगीता —260

# बार-बार आसुरी योनियों में गिरते हैं नराधम

*(श्रीमद्भगवद्गीता के देवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की अठारहवीं किस्त)*

**[ श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के अठारहवें श्लोक की विवेचना इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि अहंकार, बल, दर्प, कामना तथा क्रोध का आश्रय लेने वाले आसुरी वृत्ति के मनुष्य दूसरों की निंदा करते हैं तथा दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अंतर्यामी से द्वेष करने वाले होते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य अपने हठ को ही सच मानते हैं तथा उनके लिए उनका मिथ्या ज्ञान ही सब कुछ होता है। स्पष्ट है कि ऐसे भाव रखने वाले स्वयं दुःखी होते हैं— इसलिए उन्हें दूसरों को दुःख देने में भी आनंद आता है। उन्हें किसी के गुण दिखाई नहीं पड़ते, बल्कि वे मात्र दूसरों के दोष व दुर्गुण ही देख पाते हैं। यही कारण है कि वे अपना सारा मनोयोग दूसरों की निंदा करने में तथा उनके प्रति दोषपूर्ण दृष्टि रखने में लगा देते हैं।**

**श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे मनुष्यों की आसुरी वृत्ति उनके भीतर अहंकार के भाव को सघन कर देती है। उनका यही अहंकार उन्हें उनके बल का प्रयोग दूसरों को परेशान करने में, धमकाने, मारने-पीटने, सताने तथा उन्हें विपत्तिग्रस्त करने में प्रवृत्त करता है। काम का आश्रय लेकर वे दुराचार करते हैं और क्रोध के वशीभूत होकर वे कहते हैं कि जो भी हमारे प्रतिकूल चलेगा, हम उसका अनिष्ट करेंगे। ऐसे मनुष्य फिर अपनी समस्त ऊर्जा दूसरों के दोष देखने में, उनकी निंदा करने में, उनके प्रति द्वेष रखने में लगा देते हैं; क्योंकि उन्हें सर्वत्र दोष-ही-दोष दिखाई पड़ते हैं।**

**इसीलिए ऐसी प्रवृत्ति वाले मनुष्य यह भूल ही जाते हैं कि हरेक के शरीर में स्वयं अंतर्यामी परमात्मा मैं ही तो स्थित हूँ और वे मुझसे भी द्वेष करने लगते हैं। जो अपने अहंकार के कारण स्वयं को ही श्रेष्ठतम मानता हो, ऐसे व्यक्तित्व वाले के लिए फिर परमात्मा को स्वीकार कर पाना संभव ही नहीं हो पाता। इसीलिए हिरण्यकशिपु प्रह्लाद से द्वेष करने लगा कि यह मुझे न मानकर परमात्मा को मानता है। दुर्भाग्यपूर्ण सत्य यह है कि आसुरी वृत्ति वाले व्यक्तित्व दूसरों में द्वेष देखते-देखते अपना ही पराभव सुनिश्चित कर बैठते हैं। दूसरों के भीतर उपस्थित परमात्मा को नकारने वाला अपने स्वयं के भीतर उपस्थित परमात्मा को भी नकार बैठता है। ऐसे अहंकारी, आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य का अंत फिर सुनिश्चित हो जाता है। ]**

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि

**तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।**
**क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥ 19॥**

**शब्दविग्रह**—तान्, अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्, क्षिपामि, अजस्त्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु।

**शब्दार्थ**—उन ( **तान्** ), द्वेष करने वाले ( **द्विषतः** ), पापाचारी (और) ( **अशुभान्** ), क्रूरकर्मी ( **क्रूरान्** ), नराधमों को ( **नराधमान्** ), मैं ( **अहम्** ), संसार में ( **संसारेषु** ), बार-बार ( **अजस्त्रम्** ), आसुरी ( **आसुरीषु** ), योनियों में ( **योनिषु** ), ही ( **एव** ), डालता हूँ ( **क्षिपामि** )।

अर्थात उन द्वेष करने वाले, क्रूर स्वभाव वाले और संसार में महानीच, नराधम, अपवित्र मनुष्यों को मैं बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता रहता हूँ। भगवान का स्वरूप एक सुधार का भाव रखने वाले शिक्षक या आचार्य की भाँति है, जो हठी और उद्दंड विद्यार्थियों को अनुशासित

करने के लिए उन्हीं तरह की योनियों में स्थान देते हैं, ताकि उनके चित्त पर छाए कुसंस्कारों का शमन व शुद्धि संभव हो सके और वे शुद्ध-निर्मल होकर स्वयं का कल्याण कर सकें।

भगवान श्रीकृष्ण इस श्लोक में अर्जुन को यह सत्य पुनः स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आसुरी मनुष्य अकारण ही सबसे बैर रखते हैं और बिना किसी कारण या प्रयोजन के दूसरों के अनिष्ट करने के भाव को मन में बैठाए रहते हैं। ऐसा नहीं है कि वे मात्र ऐसा भाव रखते हैं, बल्कि वे ऐसा करने पर तुल ही जाते हैं; इसीलिए उनके कर्म क्रूर, नृशंस, निर्दयतापूर्ण एवं हिंसक होते हैं।

यही कारण है कि श्रीभगवान उनके लिए शब्द प्रयोग करते हैं—नराधम, अर्थात मनुष्य के शरीर में नीचता को प्राप्त व्यक्तित्व। ऐसा कहने से भगवान का तात्पर्य यह है कि मनुष्य का जीवन ही जीवात्मा को शुभ कर्मों को करने के लिए मिलता है और ऐसे में ये मनुष्य इतने क्रूर कर्म करके अपनी जीवनयात्रा को निकृष्ट बनाने पर तुले हैं।

कामना, वासना, महत्त्वाकांक्षा के आधिक्य के कारण ऐसी वृत्ति वाले मनुष्यों में आसुरी वृत्ति की बहुलता हो जाती है। धन बढ़ने के साथ यह भाव उनमें पनपने लगता है कि दूसरों को भी धन न मिले, फिर ऐसा मनुष्य अनुचित रीति से, चोरी छिपे, दूसरों को डरा-धमकाकर उनका धन भी स्वयं ही ले लेना चाहता है। यहाँ तक कि ऐसे मनुष्य फिर थोड़े से धन के लोभ में क्रूर कर्मों को करने से सकुचाते नहीं हैं। धीरे-धीरे उनका स्वभाव राक्षसी होता चला जाता है। यह राह पतनोन्मुख होती है और अंततः वे नराधम बन जाते हैं।

इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि **'अशुभान् आसुरीष्वेव योनिषु'** जिनका नाम लेना, जिनका दर्शन करना और जिनको स्मरण करना भी भयंकर रूप से अपवित्र कर देने वाला है—ऐसे क्रूर, निर्दयी, सबके प्रति वैर रखने वाले व्यक्तियों को भगवान आसुरी योनियाँ बार-बार देते हैं; क्योंकि वैसी योनियाँ ही उनकी रुचि की होती हैं। वह भी एक बार नहीं, बल्कि भगवान बार-बार देते हैं 'अजस्रम्' जिससे कि वे अपने कर्मों का सम्यक परिपाक कर सकें।

ऐसे मनुष्यों के साथ किसी भी प्रकार का संबंध दुष्परिणाम ही लाता है। परमपूज्य गुरुदेव ने एक पंक्ति लिखी है—दुर्जन से न वैर करो न प्रीति। दुष्ट के काटने और चाटने, दोनों में दुःख-ही-दुःख। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं कि

**बरु भल बास नरक कर ताता।**
**दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥**

अर्थात भले ही विधाता हमें नरक का वास दे दें, पर दुष्टों का संग कभी भी न दें। गोस्वामी जी कहते हैं कि नरकों का वास करने से तो पाप नष्ट होते हैं और कर्मशुद्धि होती है, पर दुष्टों के संग से अशुद्धि आती है, नए पापों का निर्माण होता है और ऐसे कर्मों के परिणामों की शृंखला शुरू होती है, जो अनंत काल तक चलती ही रहती है।

ऐसी प्रकृति वाले मनुष्य सभी के प्रति द्वेष रखते हैं, यहाँ तक कि वे भगवान के प्रति भी द्वेष रखते हैं, परंतु भगवान उनके प्रति द्वेष नहीं रखते, बल्कि उन्हें अपना समझते हैं और यह प्रयत्न करते हैं कि वे कर्मों को शुद्ध करके पुनः सन्मार्ग पर ला सकें।

जैसे अध्यापक अनुशासनहीन विद्यार्थियों को अनुशासित इसलिए करते हैं, ताकि वो सुमार्ग पर आ सकें। इसीलिए भगवान भी ऐसी वृत्ति वाले मनुष्यों को उसी तरह की योनियों में जन्म देते हैं, ताकि वे अपने पापों को शुद्ध करके स्वयं को निर्मल बना सकें।

भागवत पुराण में एक ऐसी ही कथा आती है—जय एवं विजय की। जब अहंकारवश उन्होंने ऋषियों के साथ धृष्टता की तो उन्हें पहले तो हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के रूप में जन्म मिला, फिर वे रावण और कुंभकर्ण के रूप में जन्मे और फिर दंतवक्र और शिशुपाल के रूप में उनको जन्म मिला।

इस तरह बार-बार उसी तरह की योनियों में जन्म लेते-लेते उनकी आसुरी वृत्तियाँ भी क्षीण होती गईं और वे कर्मभार से भी मुक्त हो सके। उनके पहले जन्म में तो ये वृत्तियाँ इतनी प्रभावशाली थीं कि स्वयं भगवान को उनका वध करने के लिए दो बार अवतार रूप में—वाराह एवं नृसिंह के रूप में आना पड़ा। दूसरी बार में भगवान राम ने ही रावण व कुंभकर्ण, दोनों का वध कर दिया एवं कृष्णावतार के समय में उन्होंने दुर्जनों के रूप में जन्म तो लिया, पर वे उतने प्रभावी नहीं थे। इस तरह भगवान ने उनकी वृत्तियाँ क्षीण करके उनको मुक्त कर दिया। ऐसे ही भगवान आसुरी वृत्तियों वाले मनुष्यों का कल्याण करते हैं। (क्रमशः)

# व्यक्तित्व से जुड़े सफलता के तार

जीवन में हर व्यक्ति सफल होना चाहता है और सफलता हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार भी है, लेकिन सफलता की अंधी दौड़ में जब इसके सही माने समझ से नदारद हो जाते हैं तो फिर व्यक्ति को आभासित सफलता के चरम पर भी आंतरिक संतुष्टि एवं प्रसन्नता नहीं मिल पाती। ऐसे में सफलता पर प्रश्नचिह्न लग जाते हैं और सफलता के समग्र स्वरूप पर विचार करना आवश्यक हो जाता है, जो व्यक्तित्व के समग्र विकास से जुड़ा हुआ है। प्रस्तुत है इस समग्र सफलता का राजमार्ग व इससे जुड़े कुछ आवश्यक सोपान।

शारीरिक स्वास्थ्य सफलता का पहला सबल आधार है। बिना स्वास्थ्य के सफलता अधूरी ही मानी जाएगी; क्योंकि ऐसे में व्यक्ति जीवन के उस सुख और आनंद से वंचित रहता है, जो सफलता को पूर्णता का एहसास दिला सके और स्वास्थ्य का आधार रहता है आहार-विहार का संयम, श्रमशील जीवन और संतुलित दिनचर्या। इसी के सार को इंद्रियसंयम के रूप में समझा जा सकता है। इंद्रियसंयम से संरक्षित ऊर्जा ही स्वास्थ्य के साथ सफलता का बारूद बनती है। इस संदर्भ में बरती गई जागरूकता स्वस्थ जीवन को सुनिश्चित करती है और मानसिक रूप से भी व्यक्ति को सबल बनाती है।

सफलता का दूसरा आधार रहता है, मानसिक स्वास्थ्य एवं संतुलन—जो मन की सकारात्मक, संतुलित एवं ध्येयनिष्ठ अवस्था द्वारा निर्धारित होता है और यदि सोच नकारात्मक है, अतिवाद से भरी है तथा अपने ध्येय के प्रति एकनिष्ठ नहीं है तो ऐसी चंचल, अस्थिर एवं विक्षिप्त मन:स्थिति को सफल जीवन के साथ नहीं जोड़ा जा सकता।

सफलता के लिए मन की न्यूनतम स्थिरता अपेक्षित रहती है और मानसिक स्वास्थ्य-संतुलन का आधार रहता है—मन की वैचारिक लयबद्धता। हम दिन भर किन विचारों में रमण कर रहे हैं? कितना हम अपने जीवन ध्येय की ओर बढ़ रहे हैं? मन कितनी आशा एवं उत्साह से भरा हुआ है? यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसकी परिणति जीवन की शांत एवं प्रसन्न अवस्था के रूप में सामने आती है।

इसके साथ यह भी जरूरी होता है कि हम जीवन में आ रहे उतार-चढ़ाव, हानि-लाभ, मान-अपमान जैसे द्वंद्वों के बीच कितना जल्दी मन को सम एवं स्थिर कर पाते हैं। राग-द्वेष के थपेड़ों के बीच हम कितना भावनात्मक संतुलन को साध पाते हैं। इस तरह के मानसिक तप की क्षमता जीवन की सफलता को तय करती है और इस तरह से उपजे आंतरिक संतुलन के साथ जीवन में सफलता का ठोस आधार तैयार होता है और इसका कर्त्तव्यकर्म से सीधा संबंध रहता है।

समग्र सफलता के लिए जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े कर्त्तव्यों का निर्वहन आवश्यक सोपान है। इनके प्रति आलस्य-प्रमाद जीवन में सार्थकता की अनुभूति से व्यक्ति को वंचित रखता है। अपने तन-मन एवं अंतरात्मा के साथ अपने परिवार, समाज, राष्ट्र एवं सकल मानवता के प्रति कर्त्तव्यों का पालन ही वह राजमार्ग है, जो व्यक्ति को गहरी संतुष्टि एवं सार्थकता का एहसास देता है।

उपरोक्त वर्णित जीवन के सरल-सहज सूत्र सफलता के आधार हैं, जो इसकी गहरी एवं ठोस नींव तैयार करते हैं। व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया के साथ ऐसे में जीवन की सफलता का भव्य भवन रूपाकार लेता है। इसके अंतर्गत व्यक्ति अपनी योग्यता का वर्द्धन एवं अपनी प्रतिभा का संवर्द्धन करता है और जब तक व्यक्ति शरीर व मन के आधार पर स्वस्थ नहीं है, संतुलित नहीं है तथा अपने कर्त्तव्यों का सम्यक पालन नहीं कर रहा है तो व्यक्तित्व निर्माण की यह प्रक्रिया सही ढंग से आगे नहीं बढ़ पाती और ऐसे में सफलता अधूरी ही रह जाती है।

इन चरणों को पूरा किए बिना तुरत-फुरत में खड़ा किया गया सफलता का भवन बहुत ही नाजुक एवं डाँवाडोल होता है, जो प्रतिकूलताओं के थपेड़े खाकर कब धराशायी हो जाए, कहा नहीं जा सकता; जबकि ठोस नींव पर आधारित सफलता ही टिकाऊ होती है। इसमें समय लग सकता है, लेकिन इसके साथ उपलब्ध सफलता सही माने में काबिले तारीफ होती है तथा स्थायी मूल्य लिए हुए होती है।

उपरोक्त चरण पूरा होने के साथ रचनात्मक उत्कृष्टता की स्थिति स्वाभाविक रूप में मूर्त होती है। यह बहुत कुछ व्यक्ति के स्वभाव एवं अंतर्निहित विशेषताओं के ऊपर आधारित होती है व इनके द्वारा निर्धारित होती है। इन चरणों के पूरा होने के साथ व्यक्तित्व के लक्षित आयाम क्रमश: अपनी सिद्धि के साथ पुष्पित-पल्लवित होने लगते हैं और जीवन में बहुरंगी छटा के साथ जीवन को सुरभित करते हैं और इसी के साथ जैसे व्यक्तित्व का पुष्प खिलना प्रारंभ हो जाता है।

अपनी समग्रता में पूरी ईमानदारी और समझदारी के साथ संपन्न यह प्रक्रिया स्वाभाविक रूप में आध्यात्मिक संस्पर्श लिए होती है। इस तरह जीवन की समग्र सफलता व्यक्तित्व के विकास के साथ चरणबद्ध ढंग से संपन्न होती है, जिसका कोई शॉर्टकट नहीं।

यदि कोई शॉर्टकट से सफलता के शिखर पर आरूढ़ हो भी जाए तो वह इससे जुड़े सार्थकता के बोध से वंचित रहता है और ऐसी सफलता नींव के कमजोर होने पर अधिक देर तक टिकी नहीं रह पाती। स्थायी सफलता का आधार तो आंतरिक जड़ों के आधार पर खड़ा किया गया व्यक्तित्व का भव्य भवन है, जो जीवन के प्रति गहरी समझ एवं ठोस चारित्रिक आधार लिए होता है। ❑

**एक बार गांधी जी का एक परिचित धनाढ्य व्यक्ति गांधी जी से मिलने पहुँचा। उसने कहा—''गांधी जी! आप तो जानते ही हैं कि मैंने लाखों रुपये खरच करके धर्मशाला का निर्माण करवाया था। अब गुटबाजों ने मुझे ही प्रबंध समिति से हटा दिया है। ऐसे लोग समिति में आ गए हैं, जिनका धन की दृष्टि से योगदान नगण्य ही है। इस संबंध में क्या न्यायालय में मामला दर्ज कराना उचित नहीं होगा ?''**

**गांधी जी ने कहा—''तुमने धर्मशाला धर्मार्थ बनाई थी या उसे व्यक्तिगत संपत्ति बनाए रखने के लोभ में ? असली धर्म तो वह होता है, जो बिना लाभ की इच्छा के किया गया हो। तुम अभी तक नाम व प्रसिद्धि का लालच नहीं त्याग पाए हो, इसलिए तुम धर्मशाला में प्रबंध समिति के पद से हटाए जाने से दु:खी हो। मेरी बात मानो तो तुम अब धर्मशाला की प्रबंध समिति में पद और नाम की प्रसिद्धि के मोह को त्याग दो। इससे तुम्हारे मन को शांति प्राप्त होगी।'' यह सुनकर उस व्यक्ति ने संकल्प किया कि वह अब से पद अथवा नाम के लोभ में कभी नहीं पड़ेगा।**

# विज्ञान, काव्य और धर्म

मनुष्य के व्यक्तित्व की अखंडता ही सर्वोपरि है। खंडित मनुष्य का तात्पर्य है तन, मन एवं भाव के बीच समरसता एवं सामंजस्य का न होना। खंडित मनुष्य सुविधापूर्ण हो सकता है, लेकिन न वह शांत होगा, न आनंदित। खंडित मनुष्य उपयोगी हो सकता है, लेकिन उल्लासपूर्ण नहीं। अतीत में मनुष्य के खंडों को ही स्वीकार किया गया है। मनुष्य बहुआयामी है। हम उसके एक आयाम को स्वीकार कर सकते हैं और दूसरे आयामों को इनकार कर सकते हैं।

सच तो यह है कि यह तर्क के अनुकूल पड़ता है, क्योंकि उसके खंड एकदूसरे के विपरीत मालूम होते हैं। जैसे मस्तिष्क है, वह तर्क से जीता है और हृदय भाव से। जिन्होंने मस्तिष्क को स्वीकार किया उन्हें अनिवार्यरूपेण, उनके ही तर्क की निष्पत्ति के अनुसार, भाव को अस्वीकार कर देना पड़ा, लेकिन मनुष्य अगर मस्तिष्क ही रह जाए और उसमें भाव के फूल न खिलते हों, केवल वह गणित और तर्क और हिसाब ही लगाता हो, तो वैसा मनुष्य यंत्रवत् होगा।

वैसे मनुष्य के जीवन में उल्लास नहीं हो सकता, काव्य नहीं हो सकता, संगीत नहीं हो सकता। वैसा मनुष्य संपदा एवं पद-प्रतिष्ठा तो अर्जित कर सकता है, वह बहुत कुशल भी हो सकता है, लेकिन उसकी जिंदगी सूखी होगी, उसकी जिंदगी में कभी आह्लाद का या विषाद का कोई आर्द्र भाव प्रकट नहीं हो सकता है और उसका हृदय एक मरुस्थल होगा, जिसमें हरियाली नहीं होगी और जिसमें पक्षी गीत नहीं गाएँगे।

ऐसे व्यक्ति की दृष्टि बड़ी संकुचित, बड़ी संकीर्ण होती है। वह पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ स्वीकार न कर सकता; क्योंकि पदार्थ ही उसकी पकड़ में आता है। वह अपने को जानने की बात ही भूल जाता है। आँख के लिए दर्पण चाहिए जो अपने को देखे। उसी दर्पण का नाम काव्य है। काव्य हमें अपनी झलक दिखाता है। काव्य हमें अपनी सुगंध देता है। काव्य हमारे भीतर के भाव का उद्रेक है, भाव की तरंग है।

काव्य हमारी अपने से पहली प्रतीति, पहला साक्षात्कार है। काव्य से रहित व्यक्ति सही अर्थों में जीवंत नहीं है। उसका विकास होने की संभावना थी, लेकिन वह चूक गया है और आज यह दुर्भाग्य बहुत गहन हो गया है; क्योंकि हम विज्ञान की तो शिक्षा देते हैं, हम प्रत्येक व्यक्ति को संदेह में कुशल बनाते हैं, सोच और विचार में निष्णात करते हैं।

काव्य के बिना हमारे जीवन में, वह जो दृश्य और अदृश्य के बीच का सेतु है, निर्मित नहीं होगा। काव्य का अर्थ इतना सीमित नहीं है, जितना साधारणत: समझा जाता है। काव्य में वह सब सम्मिलित है, जो तर्क से नहीं जन्मता, फिर चाहे संगीत हो, फिर चाहे नृत्य हो, चाहे मूर्तिकला हो, चाहे स्थापत्य हो। जो भी सिर्फ तर्क के अनुसार नहीं पैदा होता है, जिसमें तर्क से कुछ ज्यादा है। तर्क से परे एवं पार है, वही काव्य है और जब तक काव्य नहीं है, तब तक धर्म की कोई संभावना नहीं है। इसलिए काव्य विज्ञान के ऊपर की सीढ़ी है।

विज्ञान संसार का पदार्थ है, और विज्ञान सभी की समझ में आ जाता है। काव्य तो फूल है, चाहो तो इससे इनकार कर सकते हैं। सौंदर्य है, अस्वीकार करने में कठिनाई नहीं है। काव्य के लिए हृदय को भावपूर्ण होने की कला आनी चाहिए। काव्य के लिए मस्तिष्क को कभी-कभी दूर हटाकर रख देने की क्षमता आनी चाहिए। जैसे कभी जब आकाश में बादल घिर जाएँ और मोर नाचने लगें तो हमारा मन भी उस नृत्य में सम्मिलित हो जाता है और जब कभी दूर से रात के अँधेरे में कोयल की आवाज आए, तो अपने हृदय को खोलकर अपने हृदय के भीतर उसे आमंत्रित करना आना चाहिए।

काव्य विज्ञान से ऊपर, विज्ञान से श्रेष्ठतर है। विज्ञान की उपयोगिता है, उपादेयता है। इसलिए विज्ञान का कोई विरोधी नहीं है, परंतु उसकी उपयोगिता चरम मूल्य नहीं है। उसकी उपयोगिता हमारे लिए है। हमसे ऊपर नहीं है। हम उसके ऊपर हैं और विज्ञान की उपयोगिता इसीलिए है, ताकि हम काव्य के जगत् में प्रवेश कर सकें। यदि हम यह

समझ सकें, तो विज्ञान वरदान बन सकता है। अब तक तो यह अभिशाप सिद्ध हुआ है। विज्ञान हमें ज्यादा समय देता है; क्योंकि जिस काम में घंटों लगते थे, वह यह क्षणों में कर देता है। विज्ञान हमारे जीवन को लंबा कर देता है।

विज्ञान हमारे पास इतनी क्षमता जुटा देता है कि हम चाहें तो नाचें, चाहें तो गाएँ, चाहें तो विश्राम करें, ध्यान करें। विज्ञान समृद्धि देता है, लेकिन समृद्धि की एक ही महत्ता हो सकती है कि अंतर्यात्रा शुरू हो सके। इसलिए विज्ञान का विरोध नहीं है, परंतु काव्य आत्मसात् हो। हमें विज्ञान पर ठहरना नहीं है। विज्ञान से ऊपर काव्य का रंग है। विज्ञान अगर मंदिर बना सके तो अच्छा, लेकिन इस मंदिर का जो अंतर्-गर्भ होगा, जो गर्भगृह होगा, वह तो काव्य का ही हो सकता है। अगर यह मंदिर-ही-मंदिर हो और इसमें कोई गर्भगृह न हो, जहाँ परम अतिथि को आमंत्रित किया जा सके, जहाँ परम देवता को विराजमान किया जा सके, तो यह मंदिर खाली है, यह मंदिर अर्थहीन है। इस मंदिर का कोई प्रयोजन नहीं है। इसे बनाना व्यर्थ है। काव्य में इसकी सार्थकता होगी।

विचार बाह्य यात्रा का साधन है, भाव अंतर्यात्रा का साधन है। दोनों का अपना उपयोग है, लेकिन हमें दोनों के पार होना है, उसे कभी न भूलना चाहिए। एक क्षण को विस्मरण नहीं होना चाहिए। न तो हम मस्तिष्क हैं, न हम हृदय हैं। जब हम मस्तिष्क के पीछे खड़े हो जाते हैं, तो तर्क निर्मित होता है। विज्ञान का जन्म होता है, गणित बनता है। और जब हम भाव के पीछे खड़े हो जाते हैं तो काव्य की तरंगें उठती हैं, संगीत जन्मता है। जब हम दोनों से मुक्त होकर स्वयं को जानते हों, तो धर्म का उद्भव होता है। तब हमारे भीतर सत्य की प्रतीति होती है। सत्य की प्रतीति ही हमें संत बनाती है। नियम, व्रत, उपवास से कोई संत नहीं होता है। सत्य को जो जान लेता है, अपने भीतर विराजमान, पहचान लेता है, अपने भीतर के देवता को, अंतर्-देवता से जिसका परिचय हो जाता है, वही संत है।

संतत्त्व तो है साक्षी का अनुभव। न मैं मन हूँ, न मैं हृदय हूँ, न मैं देह हूँ, न मैं बाहर हूँ, न मैं भीतर हूँ। मैं सारे द्वंद्व और द्वैत का अतीत हूँ। जहाँ दोनों का अतिक्रमण हो गया है। जहाँ सिर्फ शुद्ध चैतन्य हो जाना है। जिस पर कोई बंधन नहीं हैं, न विचार के, न भाव के। जहाँ गणित भी खो गया और जहाँ काव्य भी खो गया। जहाँ सब परम शांत है। जहाँ परम मौन घटित हुआ है, उस परम मौन के कारण ही हमने संतों को मुनि कहा है। यह मनुष्य की त्रिमूर्ति है— विज्ञान, काव्य, धर्म। ये मनुष्य के तीन चेहरे हैं। हमें किसी एक तत्त्व से नहीं बँधना चाहिए। हमें तीनों को जानना है और तीनों से मुक्त भी होना है।

इन तीनों को जानना, और जानने वाला सदा ही अतिक्रमण कर जाता है, जानने वाला कभी भी दृश्य नहीं बनता, द्रष्टा ही रहता है। उसे दृश्य बनाने का कोई उपाय नहीं है। इसके पश्चात तुम्हारी मंजिल पूरी होती है। यही मनुष्य का अखंड रूप है। यह भविष्य का मनुष्य है, जिसके आगमन की प्रतीक्षा की जा रही है; क्योंकि अगर वह नहीं आया, तो पुराना मनुष्य सड़ गया है। पुराना मनुष्य खंडित है। एक-एक हिस्से को लोगों ने जकड़ा है।

पश्चिम ने पकड़ा विज्ञान को, पूरब ने पकड़ा धर्म को, दोनों मूर्च्छित हालात में हैं, अर्द्धजीवित हैं। पश्चिम मर रहा है, क्योंकि शरीर तो है, धन है, पद है, पर आत्मा नहीं है और पूरब मर रहा है, क्योंकि आत्मा की बातचीत तो है, लेकिन देह खो गई है। दीनता है, दरिद्रता है, भुखमरी है। पेट भूखा है, आत्मा की बात भी करें, तो कब तक करें और कितनी ही समृद्धि हमारे पास हो, अगर आत्मा ही नहीं है तो हम ही नहीं हैं। यह हमारी समृद्धि केवल हमें अपनी दरिद्रता की याद दिलाएगी और कुछ भी नहीं।

पश्चिम बाहर से समृद्ध है, पर भीतर से दरिद्र है। पूरब ने भीतर की समृद्धि में बाहर की दरिद्रता मोल ले ली है। यह खंड-खंड का चुनाव है। यह चुनाव अशुभ हुआ। नास्तिक और आस्तिक, दोनों को भीतर जोड़ देना चाहिए। पूरब और पश्चिम को एक कर देना चाहिए। यह पृथ्वी एक हो। और इस पृथ्वी के एक होने की संभावना तभी है, जब मनुष्य भीतर अखंड हो। पुराने धर्म, पुराने सिद्धांत, पुराने शास्त्र, पुरानी परंपराओं को अब और नहीं चला जा सकता है।

हमने अपने को बहुत घसीट लिया है और हमने अपने हाथ अपने लिए बहुत नरक निर्मित कर लिया। आवश्यकता है, निकलें अब उससे बाहर निकलें। जैसे साँप अपनी पुरानी चमड़ी छोड़कर सरक जाता है, ऐसे ही हम भी पुराने को छोड़कर सरक जाएँ। नई सुबह हो रही है। नया दिन आ रहा है। नए मनुष्य का दिन आ रहा है। यह नए मनुष्य की घोषणा है। ❑

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

# अध्यात्म का सच्चा स्वरूप

**परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों में वही विशिष्टता दिखाई पड़ती है, जो परमपूज्य गुरुदेव के व्याख्यानों का आधार हुआ करती थी। भारतीय गुह्य विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों का अत्यंत ही सरल व सहज भाषा में प्रतिपादन वंदनीया माताजी के उद्बोधनों की भी विशिष्टता है। ऐसे ही अपने एक उद्बोधन में वंदनीया माताजी अध्यात्म का मूल व सत्य स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि अध्यात्म का आधार लोक-उत्थान व स्वयं के परिष्कार से निर्धारित हो पाता है। संत एकनाथ से लेकर पौराणिक आख्यानों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए वंदनीया माताजी इस बात की व्याख्या करती हैं कि भक्त की भक्ति का आधार क्या होना चाहिए। ये वो आधार हैं, जिन्हें आत्मसात् करने के बाद मनुष्य का सर्वांगीण रूपांतरण सुनिश्चित हो जाता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....**

## भक्त की परीक्षा

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।**

बेटियो! हमारे प्रज्ञा परिजनो! उपासना, जप, ध्यान—ये तीनों ही अपने आत्मशोधन के लिए होते हैं। जितना यह किया जाता है, उतना ही आत्मविकास होता है। बौद्धिक विकास होता है। लौकिक और पारलौकिक संपदाएँ इसी में हैं। इसी से ये मिलती हैं। साधना, उपासना, आराधना—इन तीनों के द्वारा ही हमें बहुत कुछ मिलता है।

कथा आती है कि संत एकनाथ रामेश्वरम् की यात्रा करने जा रहे थे और अपने घड़े में गंगाजल भरकर ले जा रहे थे। रास्ते में भगवान ने सोचा कि कम-से-कम मैं इसकी नीयत की परीक्षा तो ले लूँ कि यह भक्त है अथवा बनावटी है। अंतरंग और बहिरंग दोनों में एक-सा है अथवा इसका दिखावटीपन है। इसकी भक्ति की परीक्षा लेनी चाहिए तो वे गधे का वेष धारण करके रास्ते में पड़ गए।

एकनाथ वहाँ से गुजरने लगे। उनके साथ में, उनके शिष्य भी जा रहे थे। जब उन्होंने देखा कि गधा तड़फड़ा रहा है और गरमी के दिन हैं, जिससे प्यास के कारण तड़फड़ा रहा है, तो संत एकनाथ ने अपने घड़े में जो गंगाजल था, उन्होंने सारे-का-सारा गंगाजल गधे के मुँह में डाल दिया। तब उस गधे को शीतलता मिली, शांति मिली और वह उठकर खड़ा हो गया तो उनके साथ वाले जो थे, उन्होंने कहा—"संत! तुम तो यह गंगाजल रामेश्वरम् पर चढ़ाने के लिए ले जा रहे थे, यह क्या किया?" उन्होंने कहा—"इस समय मेरे लिए यही ठीक है और यही रामेश्वरम् है। मैं वहाँ जल चढ़ाने जरूर जा रहा था; लेकिन यह जो मेरे सामने है, इस समय मेरे लिए यही रामेश्वरम् है। यह उससे कम नहीं है।

"इसी से मुझे जो कुछ भी प्राप्त हो सकता है, तो होगा या नहीं होगा, तो मैं भगवान से क्षमा-याचना कर लूँगा कि भगवान मुझसे अपराध हो गया। जल तो लाया था आपके लिए, पर यह मुझे उपयुक्त मालूम पड़ा और जिस समय उसकी उपयोगिता वहाँ थी, तो मैंने वहाँ खरच कर दिया। जैसा कुछ होगा, आगे देखा जाएगा।" यह देख भगवान की आँखों में पानी आ गया और वह जो गधे के रूप में थे, उठकर खड़े हो गए और उन्होंने कहा कि संत

तेरे लिए मैं रामेश्वरम् से चलकर यहाँ आ गया। मैं ही रामेश्वरम् हूँ। उन्होंने अपना असली रूप धारण किया और एकनाथ को छाती से लगा लिया। कलेजे से लगा लिया और कहा—"जा तेरा तप सार्थक है।" संत अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीता है। वह अपने लिए नहीं जीता है।

## लोक-मंगल हेतु उपासना

बेटे! उपासना जो होती है, वह अपने लिए तो होती ही होती है; परंतु अपने से ज्यादा दूसरों के लिए होती है और लोक-मंगल के लिए होती है। कुंती ने अपने पाँचों पांडुपुत्रों को देवमानव बनाया। देवमानव बनाने के लिए उन्होंने संस्कार दिए। युधिष्ठिर को सत्य का संस्कार दिया। युधिष्ठिर सत्यवादी थे। युधिष्ठिर को जब स्वर्ग के लिए ले जाया जा रहा था, तब उनसे कहा गया कि चलिए, अब आपका समय पूरा हो गया है, तो उन्होंने कहा कि मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा। मुझे तो नरक चाहिए। जब उन्हें स्वर्ग ले जाया गया, तो उन्होंने कहा कि आप मुझे कहाँ ले आए? उन्होंने कहा कि हम आपको स्वर्ग में ले आए; क्योंकि आप युधिष्ठिर हैं। आप हमेशा सत्यवादी रहे हैं।

उन्होंने कहा—बाकी के मेरे परिजन कहाँ गए? बाकी के आपके परिजन नरक में गए हैं। उन्होंने कहा—तो मुझको भी वहीं भेजिए, जहाँ मेरे परिजन हैं। जहाँ मेरे घरवाले हैं, जहाँ मेरे कुटुंबवाले हैं, अर्थात वहाँ जिस समाज में हम हैं, हमें वहीं नरक में रहने दिया जाना चाहिए। हमें स्वर्ग नहीं चाहिए। उन्होंने कहा—नहीं, आपने तो स्वर्ग का काम किया है, आपको तो स्वर्ग में रहना चाहिए। उन्होंने कहा—नहीं! यह स्वर्ग हमें गवारा नहीं है। हम नरक में ही रहेंगे।

बेटे, यह किसकी देन थी? यह कुंती की देन थी, जो उन्होंने समाज को श्रेष्ठ नागरिक दिए और जिन्होंने उनके अंदर वह बीज बोया, जो आगे चलकर अध्यात्म का रास्ता उन्होंने अपनाया और अपनाया ही नहीं; बल्कि हिमालय पर चले गए। पाँचों पांडवों ने वहीं तप किया और अपने शरीर को वहीं हिमालय पर त्याग दिया। इसी तरीके से संत रैदास का किस्सा आता है।

रैदास भगवान के अनन्य भक्तों में हुए हैं। भगवान के भक्तों में वे चर्मकार थे तो जरूर, लेकिन जिस काम को वे करते थे, उसमें उनके भगवान की उपस्थिति होती थी। जो भी काम हाथ में लिया, वह भगवान से कम तो था ही नहीं। कहावत है—"मन चंगा तो कठौती में गंगा।" सचमुच उनकी कठौती में गंगा रहती थी। उन्होंने गंगा का आह्वान किया और कहा कि मैं गंगा के लिए कहाँ जाऊँगा? गंगा स्वयं ही मेरे पास आएगी। मैं गंगा का आराधक हूँ। गंगा मेरी माँ है। माँ स्वयं ही मुझे गोद में खिलाने आएगी। माँ के पास मैं जाऊँगा, नहीं, माँ मेरे पास स्वयं ही आएगी और रहेगी। उनको अपनी भक्ति में इतना अटूट विश्वास था।

बेटे! हमारी भक्ति कब परिपूर्ण होती है? हमें अपने आराध्य के प्रति, अपने इष्ट के प्रति उतना ही विश्वास, उतनी ही श्रद्धा, उतना ही समर्पण चाहिए, जितना कि रैदास के जीवन में था।

## असली भक्त कौन?

एक दफे शिव और पार्वती गंगा स्नान के लिए जा रहे थे तो शंकर जी ने कहा—पार्वती! आज क्या है? आज सोमवती अमावस्या है। सोमवती अमावस्या को सब गंगा नहाने जा रहे हैं। हाँ, सब गंगा नहाने जा रहे हैं? अजी साहब! क्या मजाक कर रहे हैं? सब गंगा नहाने जाएँगे, तो कैसे काम चलेगा? ये सब स्वर्ग जाएँगे? उन्होंने कहा—हाँ। पार्वती! कहते तो ऐसा ही हैं कि ये सब स्वर्ग जाएँगे। ये सब कैसे स्वर्ग जाएँगे? उन्होंने कहा—शंकर जी! आप मुझसे मजाक कर रहे हैं। ये सब स्वर्ग जाएँगे, तो इतने सब कहाँ समाएँगे? उन्होंने कहा—तुम्हें विश्वास नहीं है। उन्होंने कहा—हाँ साहब! मुझे तो विश्वास नहीं है। लाखों व्यक्ति स्नान करने जाएँगे। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि ये जो भीड़ जा रही है, वह ऐसी है, जैसे कि मेले पर भीड़ होती है। सोमवती का मेला है या मनोरंजन है। मनोरंजन करने के लिए ये सारी-की-सारी भीड़ मुझे मालूम पड़ रही है और इनमें से एक भी ऐसा नहीं है, जो स्वर्ग में जाएगा और उसको मुक्ति मिलेगी और वैकुंठ मिलेगा।

पार्वती ने कहा—साहब, इसमें मेरा दिमाग काम नहीं करता है। अच्छा, तुम्हारा दिमाग काम नहीं कर रहा है, तो चलो मैं दिखाता हूँ कि ये सब स्वर्ग जाएँगे। अब कौन जाएँगे, कितने जाएँगे? यह फैसला वहीं भीड़ में होगा। पार्वती ने अपना जो रूप बनाया था, वह था सुंदरी का, स्वस्थ जवान सोलह वर्ष की युवती का, सुंदर आभूषण पहने हुए, शृंगार किए हुए और शंकर जी ने अपना रूप बनाया कोढ़ी का। पार्वती जी उनको अपनी पीठ पर चढ़ाकर ले जा रही थीं। थक गईं, तो बीच में बैठ गईं।

कितने ही व्यक्ति वहाँ से निकलते गए और न मालूम क्या-क्या शब्द उनसे बोलते गए। उन्होंने कहा कि इस कोढ़ी के साथ रहने से तेरी तो काया भी लजाती है। तू इतनी सुंदर युवती है और तू इस कोढ़ी के साथ क्या रहेगी? तू हमारे साथ चल। हमारे यहाँ गाड़ियाँ हैं। हमारे यहाँ खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था है, कोठी है और न जाने क्या-क्या लोभ-लालच दिखाते हुए चले गए।

पार्वती जी ने नतमस्तक होकर सिर नीचा कर लिया और दु:खी होने लगीं कि हे भगवान! क्या ये ही भक्त हैं? भक्त ऐसे हो सकते हैं? ये ही वैकुंठ में जाएँगे क्या? भोलेनाथ! आपने तो मेरी भी दुर्गति करा दी। यह आपने क्या किया? उन्होंने कहा कि पार्वती अभी देखती चलो। यह पृथ्वी अभी ऐसी विहीन नहीं हो गई है कि इसमें सब ऐसे ही होते हों।

शंकर जी ने कहा—"यह तो मैंने तुम्हें दिखाया है।" पार्वती ने कहा—"महाराज! वह समय कब आएगा? अभी तो मैं शरम के मारे मरी जाती हूँ। जहाँ लोग मुझसे पार्वती माँ कहते हैं और आपसे पिता कहते हैं; लेकिन जो मुझे इस रूप में देख रहे हैं, उससे मुझे बड़ी लज्जा आ रही है, शरम आ रही है।" अब शाम का समय हो गया था, दिन छिपने जा रहा था। वहाँ से एक राहगीर गुजर रहा था।

उसने कहा—"माँ! आप कहाँ जाना चाहती हैं? आप धन्य हैं माँ, आप जैसी देवी को प्रणाम है।" उन्होंने कहा—"भैया। मैं अपने पति को स्नान कराने के लिए लाई हूँ। मेरा पति कोढ़ी है। अब मैं थक गई हूँ। मुझसे चला नहीं जा रहा है। आज सोमवती अमावस्या है और मैं अपने पति को नहलाने के लिए लाई हूँ।" उसने कहा—"माँ! थोड़ी-सी सेवा करने का समय हमें दो। हम आपके पति को नहलाकर लाएँगे।" उन्होंने कहा—"तुम लाओगे?" हाँ, माँ! तुम्हारा जितना फर्ज और कर्त्तव्य अपने पति के लिए है और आप भी मेरी माँ हैं, तो ये भी मेरे पितातुल्य हैं। पीठ पर शंकर जी को लादकर वह राहगीर आगे-आगे चलता गया और पीछे-पीछे पार्वती चलती गईं।

## अध्यात्म का सही स्वरूप

शंकर जी ने इशारे से कहा—"पार्वती! यही वास्तविक भक्त है और इसके अंदर वास्तविक भक्ति है। यही वह व्यक्ति है, जो असली गंगा नहाने के लिए जा रहा है। इतनी भीड़ में से एक ही यह व्यक्ति आया है। यदि स्वर्ग किसी को मिलता है तो इसी को मिलेगा। इसी को सद्गति मिलेगी। इसी को शांति मिलेगी। जो कुछ मिलना है, इसी को मिलेगा। बाकी तो भीड़ थी, जो तुमने देखी थी।" साधना का सही स्वरूप, अध्यात्म का सही स्वरूप यही है।

जो अपने स्वार्थ के लिए जप करते हैं, अपनी मनोकामना के लिए तप करते हैं, तो वह कितने दिन चलेगा। मान लीजिए हमको परायी संपत्ति मिल भी जाए, तो वह संपत्ति कितने दिन की होगी? मैं समझती हूँ कि वह थोड़े दिन में चली जाएगी। जो अपनी उपार्जित संपत्ति होती है, वह टिकाऊ होती है। उसमें हमारी लगन होती है, हमारी भावना होती है, हमारी मेहनत होती है और हम उस संपत्ति को बढ़ाते भी हैं; किंतु जो मुफ्त में हाथ आई हुई है, उसे खा-पीकर बराबर कर देते हैं। वह किसी की दी हुई है, हमारे पास है नहीं, अत: वह जल्दी ही चुक जाती है, अथवा उसका दुरुपयोग करने लगते हैं। उसकी वास्तविकता को समझते नहीं हैं।

बेटे! हमें अपने भौतिक सुख के लिए बीबी चाहिए, हमको बच्चे चाहिए। हमको पैसा चाहिए। इसी के लिए जो जप और ध्यान किया जाता है। वह सार्थक नहीं होता। वह व्यक्तिगत होता है न? अत: जो व्यक्तिगत हो गया, उसमें वह सुख कहाँ है, वह शांति कहाँ है? उसमें वह उपलब्धि कहाँ है? आध्यात्मिक उपलब्धि उससे नहीं हो सकती।

शंकर और पार्वती रास्ते में जा रहे थे। उसी रास्ते में एक ब्राह्मण, एक ब्राह्मणी और एक उनका बच्चा जा रहा था। मन में वे बड़े दु:खी हो रहे थे और कह रहे थे कि भगवान हमने इतने दिन आपकी उपासना की और हमको कुछ प्राप्त नहीं हुआ। यह कैसी विडंबना है। इतने दिन हमने भगवान शंकर जी की सेवा की; लेकिन हमको कुछ उपलब्धि नहीं हुई। हमको कुछ नहीं मिला। हम निर्धन-के-निर्धन रह गए और हमारे हाथ कुछ नहीं लगा।

शंकर जी ने कहा—देखो जो अध्यात्म का स्वरूप है, इसको कैसे बिगाड़ा जा रहा है। भगवान का जो भक्त है, वह अपने लिए कभी नहीं माँगता है; वरन वह राष्ट्र के लिए माँगता है। अपने लिए वह ऐसी चीज माँगता है, जिससे कि उसका आत्मोद्धार हो सके। जिससे उसे शक्ति मिले और भक्ति मिले। शंकर जी उपस्थित हुए। पार्वती जी बोलीं—नहीं महाराज जी। इनको तो कुछ देना ही चाहिए। जो अपने दरवाजे पर आया है, उसको आप क्या खाली हाथ जाने देंगे?

उन्होंने कहा—पार्वती! ये उन भक्तों में से नहीं हैं। इनको चाहे कितना दिया जाए, ये खाली-के-खाली रहेंगे। नहीं साहब! आप तो ऐसे ही कह रहे हैं। इनको तो आप दे ही दीजिए। इन्हें तो आप मेरे कहने से दे दीजिए, फिर चाहे आप मत देना, पर इतनी विनती तो आप मेरी मान लीजिए। उन्होंने कहा—अच्छी बात है, तुम्हारी बात मान लेते हैं और उनके सामने उपस्थित हुए।

उन्होंने कहा भाई, आप लोग क्यों रो रहे हो? वे बोले—भगवान हम तो कुछ माँगना चाहते हैं। बोलो न, माँगो! तुम एक वरदान माँगो तो बुढ़िया सबसे पहले आ गई और बोली—शंकर जी! अठारह साल की बना दो और खूबसूरत महिला बना दो। उन्होंने कहा—जा दिया वर। वर दे दिया तो वह एक खूबसूरत महिला बन गई। बुड्ढा जो था, वह उसे देखकर कुड़कुड़ाया और जल-भुनकर खाक हो गया। तिलमिला गया। वह गुस्से से आवेश में आ गया। उसने कहा—अरे दुष्ट, चांडाल तूने यह क्या किया तो शंकर जी बोले—अरे भाई! तुम क्यों परेशान हो रहे हो? तुम भी वरदान माँगो।

उसने कहा—महाराज जी! मैं तो यह माँगता हूँ कि इसको आप सुअरिया बना दो। यह जो मेरी पत्नी है और जो 16—18 वर्ष की बनी है, इसको सुअरिया बना दो। मुझे शरम आती है कि मैं तो बुड्ढा हूँ और यह मेरे सामने 16-17 साल की रहेगी, तो इसे देखकर बाकी दूसरे लोगों की क्या मनोभूमि बनेगी?

शंकर जी ने कहा—अच्छा, लो और उन्होंने उसे सुअरिया बना दिया। अंततोगत्वा जो बच्चा था, वह रोने लगा कि अरे मेरी मम्मी को क्या हो गया? अरे, मेरी मम्मी तो सुअरिया बन गई। हाय भगवान! यह क्या हो गया? तो भगवान बोले—अरे बेटा! तू भी वरदान माँग ले। तू क्यों परेशान हो रहा है? तू क्यों दुःखी होता है? तेरा भी एक वरदान ड्यू है, तू माँग।

बच्चे ने कहा कि भगवान मेरी तो जैसी माँ थी, वैसी ही बना दो। तो उन्होंने हाथ में जल लेकर के उसके ऊपर छिड़क दिया और वह जैसी बुढ़िया थी, वैसी ही बन गई। उन्होंने कहा—अब तुम जाओ। उनने कहा—अरे! हम कैसे जाएँ? हमें तो कुछ नहीं मिला। शंकर जी ने कहा—तुम्हारे एक-एक वरदान हमारे पास थे, सो तुमने ले लिए। अब तुम अपने घर वापस जाओ। फिर उन्होंने कहा—पार्वती! तुमने देखा न, पात्र को दिया जाता है और यदि कुपात्र को दिया जाए, तो दिया हुआ वरदान इसी तरीके से निरर्थक चला जाता है, जिस तरीके से इसका गया है। सुपात्र को हम थोड़ा देंगे, तो भी वह उसको बोएगा, उसको काटेगा, उसे सँभालेगा। वह कामना नहीं रखेगा। वह देगा, दूसरों को देगा न कि वह लेगा।

## कुपात्र के लिए वरदान का मोल नहीं

बेटे! कुपात्र लेकर भी, वरदान पाकर भी उसका दुरुपयोग करेगा। दुरुपयोग कैसा करेगा? जैसा कि भस्मासुर ने किया था। उसने तप किया। तप से शंकर जी प्रसन्न हो गए। उन्होंने कहा—वरदान माँगो। वरदान माँगा, तो उसने कहा कि आप ऐसा वरदान दीजिए कि जिसके सिर पर हाथ रख दूँ, वही भस्म हो जाए। उन्होंने कहा—हाँ! बिलकुल ऐसा ही होगा। शंकर जी ने वरदान दे तो दिया, पर अब तो वह शंकर जी के ही पीछे पड़ गया। शंकर जी के ही ऊपर आफत आ गई। शंकर जी की जो पत्नी पार्वती जी थीं, उनकी खूबसूरती पर उसका दिमाग डाँवाडोल हो गया।

**राजा अंबरीश वन में कहीं जा रहे थे। उन्होंने रास्ते में देखा कि एक युवक खेत में हल जोत रहा है तथा बड़ी मस्ती से भगवान की भक्ति में भजन गा रहा है। राजा उसकी मस्ती से अत्यंत प्रभावित हुआ। उसने युवक से पूछा—"तुम्हारी मस्ती से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारी इस मस्ती का राज क्या है?"**

**युवक ने उत्तर दिया—"राजन्! अपनी मेहनत की कमाई खाता हूँ। हर क्षण भगवान को याद करके संतुष्ट रहता हूँ। मैं एक रुपया रोज कमाता हूँ। उसमें चार आने बच्चों पर, चार आने माता-पिता पर, चार आने से दान; बचे चार आने से अपने परिवार का खरच चलाता हूँ। इसलिए सदा प्रसन्न रहता हूँ।" राजा को अनपढ़ किसान की मस्ती का रहस्य समझ आ गया।**

पार्वती बहुत परेशान हुईं। महाराज! आपने किस राक्षस को ऐसा वरदान दे दिया, तो उन्होंने कहा—अब क्या करना चाहिए? उन्होंने विष्णु की आराधना की और विष्णु भगवान आए। उन्होंने कहा कि इसका हल अभी निकालता हूँ, आप क्यों परेशान होते हैं? विष्णु भगवान ने मोहिनी का रूप धारण किया मतलब पार्वती का रूप धारण करके राक्षस के सामने उपस्थित हुए।

उन्होंने कहा कि क्या चाहता है? उसने कहा कि तेरे साथ शादी करना चाहता हूँ। शादी करना चाहता है? हाँ। शादी तो हम जरूर कर लेंगे, परंतु एक काम कर, जरा नाच दिखा दे। मुझे नाच बहुत पसंद है। भस्मासुर के सामने विष्णु भगवान, जो महिला का रूप धारण किए थे, खड़े थे। उन्होंने कहा कि जरा सिर पर हाथ रखकर नाच। बस, वह अपने सिर पर हाथ रखकर नाचने लगा। उसने कहा—बम् भस्म-बम् भस्म। इतना कहना हुआ और वह भस्म हो गया।

बेटे! कुपात्र को दिए हुए वरदान का यही परिणाम होता है; क्योंकि उसने जहाँ तप के द्वारा, भक्ति के द्वारा जो पाया, उससे उसके अंदर वह लालच, वह लोभ, वह अहंकार और वह दुष्ट प्रवृत्तियाँ आ गईं, जो भक्त के अंदर नहीं आनी चाहिए थीं और वही उसको ले डूबीं। जो भक्त होता है, उसकी कामना क्या होती है?

भक्त कहता है—"**न त्वहं कामये राज्यं न सौख्यं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्त्तिनाशनम्॥**" न तो राज्य चाहिए, न धन चाहिए, न वैभव चाहिए। भगवान हमको तो वह शक्ति दीजिए, जिससे हम अपना उद्धार कर सकें और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हो सकें। जो मानव जाति के रूप में, पीड़ा और पतन के रूप में हमको पुकार रहा है। राष्ट्र हमको पुकार रहा है। हे भगवान! देना है तो हमको वह सामर्थ्य दीजिए और वह शक्ति दीजिए, जिसके आधार पर हम आगे चलें और हम समाज को सँभाल सकें।

महाभारत में एक कथा आती है। द्रौपदी का चीरहरण हो रहा था और द्रौपदी विलाप कर रही थी और कह रही थी कि जो पाँचों पांडव हैं, वे शक्तिविहीन हो रहे हैं। भगवान मेरी लाज लुटी जा रही है, आकर के मेरी लाज बचाइए। भगवान दौड़े-दौड़े आए कि मेरे भक्त के ऊपर विपत्ति का समय आ गया है। उन्होंने कहा—द्रौपदी मैं आया तो हूँ, पर मैं तेरी क्या सेवा कर सकता हूँ। तेरे पुण्य का कोई अंश जमा है क्या?

उसने कहा भगवान। मैं नहीं जानती। कल्पना में भी मैंने तो जिंदगी में भी कोई ऐसा पुण्य नहीं किया, जो मैं आपको बता सकूँ। आप ही अब समझ लीजिए कि मेरा पुण्य हो कहाँ सकता है कि नहीं हो सकता, लेकिन मैं आपकी भक्त जरूर हूँ। उन्होंने कहा कि भक्त तो हो; लेकिन तुमने कोई पुण्य-परमार्थ किया है कि नहीं किया है। किया है तो तेरा ड्यू है और नहीं किया है तो तेरे लिए कुछ नहीं कर सकता हूँ।

तो उसने कहा कि महाराज! मैंने कुछ नहीं किया, पर एक घटना मुझे ध्यान में आती है कि गंगा जी में एक संत नहाने गए थे और संत की लँगोटी उस गंगा में बह गई थी। संत नग्नावस्था में थे, तो मैंने कहा—पितामह! आपकी मैं कोई सेवा कर सकती हूँ क्या? उन्होंने कहा—बेटी! क्या सेवा कर सकती है। मेरी लँगोटी थी, वह तो बह गई, अब मुझे पानी में ही खड़ा रहना पड़ेगा और मुझे यहीं शरीर समाप्त करना पड़ेगा। तो मैंने कहा—नहीं पितामह! आपकी बेटी हूँ। आधी साड़ी फाड़ करके उस ब्राह्मण को, उस संत को मैंने दे दी और घर वापस आ गई।

द्रौपदी ने कहा—भगवान! चाहे आप इसको पुण्य समझते हों, हो सकता है उस आधी साड़ी की क्या वैल्यू हो? उन्होंने कहा—बस, हो गया। उन्होंने देखा कि क्या रजिस्टर में इसका कुछ जमा है। उन्होंने पाया कि इसका पुण्य जमा है। उन्होंने कहा कि हे देवि! सवाल यह नहीं है कि पुण्य कितना किया। सवाल है नीयत का। उन्होंने द्रौपदी की नीयत देखी। द्रौपदी की महाभारत में कथा आती है।

जिन लोगों ने महाभारत को सुना है और पढ़ा है कि द्रौपदी का कितना चीर वापस दिया गया साड़ी के रूप में। यह भक्त की पहचान है। भक्त के अंदर यह विशालता होती है। बुद्धि और मुक्ति क्या चाहिए, उसको मुक्ति चाहिए? नहीं मुक्ति नहीं, बुद्धि चाहिए। बुद्धि की विशालता चाहिए भक्त को। भक्त को माँ जैसी विशालता चाहिए। भक्त जब माँ जैसा निर्मल हो जाता है, स्वच्छ हो जाता है और पवित्र हो जाता है, तो वह भक्त दूसरों के लिए कुछ करने के लिए मजबूर हो जाता है और अपनी कठिनाइयों को ध्यान नहीं रखता।

बेटे! भक्त दूसरों की सुविधाओं के लिए, दूसरों को विपत्ति से उबारने के लिए वह अपने को संकट में डालता है। अपने लिए संयमी बनता है और दूसरों के लिए उदार बनता है। दूसरों की सेवा करता है और सहायता करता है। यह है मूल। पूजा-उपासना-जप-ध्यान जो भी है, इसी में है और इसी से हमको सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

अंतर्मन की मलिनता को धोने के लिए जप आवश्यक है, ध्यान आवश्यक है। जब तक हम भगवान के समीप नहीं बैठेंगे, तब तक हम उतने निर्मल नहीं बन सकेंगे। भगवान की शक्ति तभी हमारे अंदर आएगी, जब हम भगवान के निकट बैठेंगे, चाहे वह आधा घंटा ही क्यों न हो। गांधी जी ने आधे घंटे की उपासना की थी, प्रतिदिन आधा घंटा भगवान का भजन किया था, लेकिन वो आधा घंटा चौबीस घंटे से भी ज्यादा होता था; क्योंकि उनका सारा-का-सारा समय लोक-मंगल के लिए होता था, राष्ट्रोत्थान के लिए होता था। अपनी निर्मलता को प्राप्त करने के लिए, अपनी संकीर्णता को छोड़ने के लिए और भगवान के समीप बैठने के लिए और भगवान को अपने में मिलाने के लिए और अपने को भगवान में मिलाने के लिए आधा घंटा पर्याप्त होता है। वह वे समझते थे। आज हम अपनी बात यहीं समाप्त करते हैं।

॥ ॐ शांतिः ॥

**एक विशाल वन में प्रतिवर्ष पक्षियों की प्रतियोगिता होती थी। सभी पक्षी अपनी-अपनी क्षमता दिखाते। कोयल गाने में, मोर नाचने व सुंदरता में, तोता भाषण में और बगुला नाटक में हमेशा जीत जाते, पर मोरों को इतने में संतोष नहीं होता था। वे बहुत सारे पुरस्कार जीतकर अन्य पक्षियों पर अपनी धाक जमाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपना एक प्रतिनिधि माता सरस्वती के पास भेजा।**

**मोरों के प्रतिनिधि धनानंद ने देवी सरस्वती से कहा—"देवी जी! आप तो सर्वसमर्थ हैं, अतः कृपया हमें कोयल जैसी आवाज, कबूतर जैसे पैर तथा नीलकंठ जैसा गला दे दें, ताकि हमें अधिकतम पुरस्कार मिल जाएँ।"**

**धनानंद की बात सुनकर माता सरस्वती बोलीं—"धनानंद! भगवान ने सबको अलग-अलग गुण दिए हैं, इसलिए दूसरे पक्षियों से ईर्ष्या मत करो। शरीर तो भगवान ने बनाया है, इसे तो बदला नहीं जा सकता, परंतु स्वभाव तो बदला ही जा सकता है। अपना स्वभाव अच्छा बनाओ तथा गुणी बनो। इससे तुम्हें सबका स्नेह- सम्मान मिलेगा।"**

विश्वविद्यालय परिसर से—199

# राष्ट्रभक्ति के भावों से भर उठा विश्वविद्यालय

वर्तमान समय में मानवता की जो दशा सर्वत्र दिखाई पड़ती है, उसे देखकर कई बार भविष्य के प्रति एक निराशा का भाव जन्म लेता है और इस कारण से जन्म लेता है; क्योंकि आज मानवता के मानदंड अत्यंत ही गिरे हुए एवं संकीर्ण होते दिखाई पड़ते हैं। मानवता के सफर को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ये कारवाँ विनाश, विध्वंस और विप्लव की ओर बढ़ा चला जा रहा है और यदि मनुष्य जाति सामूहिक आत्महत्या न भी करे तो भी जिस तरह का जीवन और दृष्टिकोण इनसान ले करके बैठे हैं, उसमें कौन-सा सुख और कौन-सी शांति दिखाई पड़ती है?

विडंबना के ऐसे दौर में यदि समाधान के स्वरों को देखा जाए तो वो मात्र मानवीय व्यक्तित्व के समग्र रूपांतरण से ही जन्म ले सकते हैं। बाहरी वैभव नहीं, वरन आंतरिक उत्कृष्टता ही एक सुखी व समुन्नत जीवन का आधार बन सकती है। इस तरह के व्यक्तित्वों का निर्माण करना ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय की सदा से पहचान रहा है।

परमपूज्य गुरुदेव ने एक उत्कृष्ट व्यक्तित्व के आधार सूत्रों के रूप में साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा को चिह्नित किया था और उनमें से सेवा, विशेष रूप से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा किए गए प्रयासों में से एक रही है। विश्वविद्यालय का राष्ट्रीय सेवा योजना विभाग इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमेशा कृतसंकल्प रहता है।

राष्ट्र की सेवा व सद्भावना को लेकर भारत सरकार द्वारा सन् 1969 में स्थापित यह योजना युवा एवं खेल मंत्रालय की एक महत्त्वपूर्ण पहल है, जिसके स्थापना दिवस को देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा अत्यंत गौरव के साथ मनाया गया। इस अवसर पर राष्ट्रीय सेवा योजना विभाग के द्वारा पोस्टर, क्विज व कविता पाठ जैसी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया, जिसमें देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा बढ़-चढ़कर भाग लिया गया।

इस कार्यक्रम को सफल बनाने में राष्ट्रीय सेवा योजना विभाग के समन्वयक डॉ0 उमाकांत इंदौलिया एवं कार्यक्रम अधिकारियों में डॉ0 इप्सित प्रताप सिंह, श्री प्रखर सिंह पाल, डॉ0 अरुणेश पाराशर एवं श्रीमती गीतांजलि ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यटन विभाग द्वारा विश्व पर्यटन दिवस के अवसर पर अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों को संपन्न किया गया। इस वर्ष के पर्यटन दिवस की थीम 'टूरिज्म फॉर इन्क्लूजिव ग्रोथ' थी, जिसके अंतर्गत सामाजिक एवं टिकाऊ पर्यटन के साथ-साथ समावेशी पर्यटन की अवधारणा को स्पष्ट किया गया।

इस अवसर पर चले कार्यक्रमों को तीन चरणों में बाँटा गया। पहले चरण में अनेकों साहसिक पर्यटन वाले कार्यक्रमों को संपन्न किया गया तो दूसरे एवं तीसरे चरण में शैक्षणिक दृष्टि से गतिविधियों को संपन्न किया गया। कार्यक्रम के अंतिम चरण में आयोजित कार्यक्रम में प्रतिकुलपति जी ने पर्यटन विभाग से अपनी इस अपेक्षा को रखा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यटन विभाग को तीर्थ परंपरा के पुनर्जागरण का केंद्र बनना चाहिए। उत्तराखंड की देवभूमि अनेक तीर्थों की भूमि है एवं यहाँ मात्र पर्यटन ही नहीं, वरन सांस्कृतिक संरक्षण भी हमारे प्रयासों का आधार होना चाहिए।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यटन विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ० अरुणेश पाराशर, समन्वयक डॉ० उमाकांत इंदौलिया एवं डॉ० मोनिका पाण्डेय, श्री अवनेंदु पाण्डेय, श्री आशीष पंवार, श्री प्रखर सिंह पाल एवं श्री पंकज सिंह चन्देल द्वारा उल्लेखनीय योगदान दिया गया।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा प्राप्त किए गए अद्भुत कीर्तिमानों में एक और कीर्तिमान उस दिन जुड़ा, जब शांतिकुंज स्वर्ण जयंती व्याख्यानमाला के तहत उत्तराखंड के नवनियुक्त राज्यपाल लेफ्टिनेंट जनरल (सेवानिवृत्त) श्री गुरमीत सिंह जी का आगमन हुआ।

माननीय राज्यपाल महोदय ने सर्वप्रथम शांतिकुंज पहुँचकर 120 फुट ऊँचे राष्ट्रीय ध्वज का लोकार्पण किया व उसका पूजन-वंदन किया। इस 120 फुट ऊँचे झंडे को शांतिकुंज की पावन भूमि पर लहराता देख सभी के भीतर एक विलक्षण ऊर्जा व राष्ट्रभक्ति की लहर दौड़ गई।

शांतिकुंज में राष्ट्रीय ध्वज का लोकार्पण करने के उपरांत माननीय राज्यपाल महोदय देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचे। वहाँ उन्होंने सबसे पहले दिव्य प्रज्ञेश्वर महाकाल प्रांगण में पूजा-अर्चना संपन्न की व शौर्य दीवार पर वीर शहीदों को पुष्पचक्र भेंट करके उनका नमन-वंदन किया। इस उपलक्ष्य में विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में उनका व्याख्यान भी आयोजित किया गया।

माननीय राज्यपाल महोदय ने अपने व्याख्यान में कहा कि वे नवरात्र के पावन काल में परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी का आशीर्वाद लेने आए हैं। उन्होंने कहा कि गायत्री मंत्र हमें अपनी अंतरात्मा से जोड़ता है और उन्हें शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचकर एक गहरी शांति का अनुभव हो रहा है।

विश्वविद्यालय के प्रयासों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वे बोले कि पूज्य गुरुदेव ने जिस सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का स्वप्न देखा था—उसे पूरा करने के लिए ही आज गायत्री परिवार एवं विश्वविद्यालय संकल्पित है।

राज्यपाल ने कहा कि राष्ट्रध्वज देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता के साथ हम सबको भारतीय होने की डोर में बाँधे हुए भी है। हम अपना सब कुछ राष्ट्र, समाज व संस्कृति के लिए समर्पित कर सकते हैं, पर राष्ट्र की सुरक्षा करते हुए यदि प्राणों की आहुति हो जाए तो यह गर्व की बात है।

उनके उद्बोधन से सैनिकों जैसा जोश, उमंग व उत्साह देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में गूँज उठा। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए अखिल विश्व गायत्री परिवार के प्रमुख श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने कहा—"यह उत्तराखंड का सौभाग्य है कि देव भूमि में पहली बार सेना से सेवानिवृत्त अधिकारी को राज्यपाल की जिम्मेदारी मिली है।" वे बोले कि संत, सुधारक और शहीद अवतारों की श्रेणी में आते हैं। साथ ही उन्होंने कहा कि यह मेरा सौभाग्य है कि इतनी पवित्र व दिव्य भूमि पर मुझे देश का गौरव राष्ट्रीय ध्वज फहराने का सुअवसर मिला है।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि भारत का तिरंगा मात्र एक झंडा नहीं, बल्कि संपूर्ण संदेश है। इसके तीन रंग हमें साहस-समृद्धि और शांति का संदेश देते हैं और इसके मध्य में प्रतिष्ठित धर्मचक्र हमें पूज्य गुरुदेव के उस घटनाक्रम की याद दिलाता है, जिसके माध्यम से वे आजादी के मतवाले श्रीराम मत्त के रूप में जाने गए। इस तरह यह एक ऐतिहासिक कार्यक्रम रहा। ❑

**संवत् 1740 में गुजरात-सौराष्ट्र में भारी अकाल पड़ा। मनुष्य और पशु सभी बेहाल हो गए। तत्कालीन नरेश ने यज्ञ कराए, साधुओं से प्रार्थना की, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। तब किसी विद्वान व्यक्ति ने नरेश से कहा कि अमुक व्यापारी चाहे तो वर्षा हो सकती है। राजा ने व्यापारी के पास जाकर उससे वर्षा कराने हेतु प्रार्थना की। व्यापारी ने कहा—"महाराज! मैं तो तुच्छ मनुष्य हूँ, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं।" परंतु राजा अपनी जिद पर अड़ गए। तब व्यापारी अपनी तराजू उठाकर बाहर आकर बोला—"यदि यह तराजू सदैव सत्य और ईमानदारीपूर्वक तौलती रही हो तो देवराज इंद्र वर्षा करें।" सबसे बड़ी सिद्धि है—ईमानदारी। व्यापारी की बात पूरी होते-होते ही प्रबल वृष्टि हो गई। राजा और प्रजा जन प्रसन्नता से झूम उठे।**

अपनों से अपनी बात

# प्रज्ञा-परिजनों की पात्रता की परीक्षा का समय

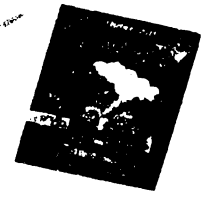

परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी आत्मकथा 'हमारी वसीयत और विरासत' में एक अध्याय लिखा है; उसका नाम है—'विनाश नहीं सृजन-हमारी भविष्यवाणी।' उस अध्याय में पूज्य गुरुदेव ने बिना किसी लाग-लपेट के बड़ी स्पष्टता से इस बात को कहा है कि 'सारे संसार के मूर्द्धन्यों, शक्तिवानों और विचारवानों की आशंका एक ही है कि इस सृष्टि का विनाश होने जा रहा है। हमारा अकेले का कहना यह है कि उलटे-को-उलटकर सीधा किया जाएगा।' इसी बात को आगे बढ़ाते हुए, वे लिखते हैं कि 'हमारे भविष्यकथन को अभी भी गंभीरतापूर्वक समझ लिया जाए। विनाश की घटाओं के बीच अगले दिनों एक तूफानी प्रवाह जन्म लेगा, जो इन घटाओं को उड़ाकर कहीं दूर ले जाएगा और अंधकार को चीरता हुआ प्रकाश से भरा वातावरण दृष्टिगोचर होगा।' अंत में पूज्य गुरुदेव यह भी लिखते हैं कि इस कार्य को ऋषितंत्र संपन्न करेगा—चाहे नाम दिलाने के लिए किसी को भी आगे क्यों न खड़ा कर दिया जाए।

यह शब्द भले ही कुछ दशक पुराने हों, परंतु जो भविष्यकथन परमपूज्य गुरुदेव का है, उसकी सत्यता पर जरा-सा भी संदेह कर पाना संभव नहीं है। इस सृष्टि की महान बलशाली, शक्तिमान सत्ताएँ, जिनके संकल्प मात्र से बड़े-बड़े परिवर्तन चुटकियों में संभव हो जाते हैं—ऐसी शक्तियाँ भी इस दैवी योजना का हिस्सा बनने के लिए आतुर दिखाई पड़ती हैं। जिस परिवर्तन के विषय में परमपूज्य गुरुदेव ने लिखा—बोला है, वह परिवर्तन सुनिश्चित है।

पूज्य गुरुदेव ने वर्षों पहले की अखण्ड ज्योति में लिखा भी था कि 'नवयुग का आगमन सुनिश्चित है। प्रज्ञायुग उसका नाम होगा। गंगा अवतरण का मन बना चुकी है। शिवजी ने अपनी जटाएँ बिखेर दी हैं। अब आवश्यकता मात्र भगीरथ जैसे राजपुत्र की रह गई है। अर्जुन को भी यह कहा गया है कि इच्छा हो तो विजयश्री का वरण कर, वरना चुप बैठ। तेरे बिना महाभारत अनजीता न पड़ा रहेगा।'

ऐसे में कभी-कभी यह प्रश्न मन में उठता है और उसका उठना भी स्वाभाविक है कि जिस परिवर्तन के लिए पूज्य गुरुदेव ने इतना स्पष्ट लिखा है वो घट क्यों नहीं रहा है? आज की परिस्थितियों को देखकर तो ऐसा लगता है कि जैसे कष्ट-कठिनाइयों की तो घटाएँ ही उमड़ आईं हों।

प्रकृति और पर्यावरण तो भगवान नृसिंह की तरह कुपित नजर आते हैं। मनुष्य की दुर्बुद्धि और दुर्भावनाएँ भी और बढ़ ही गई हैं। परिस्थितियाँ भी पहले की तुलना में और ज्यादा विषम, विकल और वीभत्स हैं। ऐसा प्रतीत होगा कि मानो पूरा विश्व ही वातावरण के अंधकार से ग्रस्त है। ऐसे में मन में यह प्रश्न उठता है कि इन परिस्थितियों में नवयुग की संभावना कैसे बन सकेगी?

इन प्रश्नों के उत्तरों को जब हम तलाशते हैं तो एक पौराणिक आख्यान को स्मरण कर लेना जरूरी है। पाठकों को देवासुर संग्राम की घटना स्मरण होगी। महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण जब देवताओं की शक्ति कुंद पड़ी तो भगवान विष्णु ने खोई शक्ति के अर्जन के लिए उनको समुद्रमंथन की आज्ञा दी। वासुकि नाग को रस्सी बनाकर, मंदराचल पर्वत को मथानी बनाकर समुद्र को मथने का कार्य जब प्रारंभ हुआ तो समुद्र में से 14 रत्न निकले।

पहला रत्न जो निकला, वह था विष—हलाहल, कालकूट। उसे यदि भगवान शिव ने धारण न किया होता तो सृष्टि का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता। कुछ ऐसा ही युग निर्माण योजना के साथ घटना भी अनिवार्य क्रम से जुड़ा है। इस ईश्वरीय संकल्प की यात्रा भी संघर्षों की राह से गुजरने के बाद ही तय हो पाएगी। यह दैवी योजना का एक अभिन्न अंग होता है कि सौभाग्य की राहें, कष्टों के पथ से गुजरने के बाद ही खुल पाती हैं।

यही कारण है कि परमपूज्य गुरुदेव ने जब अखण्ड ज्योति को प्रारंभ किया तो निम्न पंक्तियों को लिखा—

**सुधा बीज बोने से पहिले कालकूट पीना होगा।**
**पहिन मौत का मुकुट विश्वहित मानव को जीना होगा॥**

यह स्पष्ट ही है कि कष्टों-कठिनाइयों के पथ से गुजरे बिना, सृष्टि के एकत्रित कर्म का परिपाक किए बिना सतयुग के अवतरण की परिस्थितियों का निर्माण भी संभव

नहीं। उपरोक्त सत्य के साथ यह सत्य भी अनिवार्यता का हिस्सा है कि बिना ध्वंस के सृजन की व्यवस्था कहाँ संभव है ?

लोग जब नवरात्र के अवसर पर ज्वारे उगाते हैं तो वो ज्वारे तो कटोरी के भीतर ही उग जाते हैं, परंतु जब फसल उगाई जाती है तो फिर किसान की जैसी ही व्यवस्था बनानी पड़ती है। हल, कुदाली, फावड़े इत्यादि चलाने पड़ते हैं, मिट्टी की निराई-गुड़ाई का, खरपतवार को उखाड़-उखाड़कर निकालने का क्रम चलता है, तब जाकर वह भूमि इस योग्य बन पाती है कि वहाँ बीज बोए जा सकें। यदि कोई निराई-गुड़ाई के काम को ही देखे तो वो खेती को ध्वंस का ही काम मान बैठेगा। जब कि सत्य तो इससे विपरीत है। सत्य तो यह ही है कि बिना भूमि की जुताई के फसल रोप पाना संभव नहीं।

उसी तरह यह भी सत्य है कि नवयुग की, सतयुग की परिस्थितियों का निर्माण किए जाने के लिए वर्तमान समय की ध्वंसात्मक परिस्थितियाँ जरूरी हो जाती हैं। जैसे यह सत्य है कि बिना नींव खोदे, इमारत बना पाना संभव नहीं है—वैसे ही यह भी सत्य है कि बिना ध्वंस के सृजन संभव नहीं। जैसे बिना प्रसूति का कष्ट पाए नई आत्मा को जन्म दे पाना संभव नहीं—वैसे ही बिना वर्तमान समय के अंधकार को भोगे नए युग के सूर्य को उगा पाना संभव नहीं।

स्मरण रखने योग्य बात है कि यह सत्य है कि कष्ट बढ़ा है, अंधकार बढ़ा है, पर वह इसलिए बढ़ा है; क्योंकि वह एक सुनियोजित योजना का अंग है। प्रकृति का सत्य यही है कि पहले कष्ट भोग लिया जाए तो बाद का जीवन आसान हो जाता है। ऐसा ही सृष्टिगत व्यवस्था में होता है और ऐसा ही व्यक्तिगत परिष्कार की प्रक्रिया में भी होता है। तपस्या-साधना का पथ ही कष्टों को सहन करने का पथ है। ये कष्ट हर दैवी मार्ग के पथिक को सहन करने पड़ते हैं। परमपूज्य गुरुदेव ने इसीलिए हमारी वसीयत और विरासत में लिखा भी है कि 'भगवान कृष्ण भगवान बाद में बने, पहले तो उन्हें पैदा होते ही पूतना का विष झेलना पड़ा और दूध के दाँत टूटने से पहले बकासुर, अघासुर, कालिया सर्प इत्यादि से लड़ना पड़ा।'

महानता का पथ ही ऐसा है कि इस पर चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को भारी खतरे उठाने पड़ते हैं। हरिश्चंद्र महाराज को सत्यवादी कहलाने से पहले किन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा—क्या हम यह जानते नहीं हैं ? क्या हमें याद नहीं कि पांडवों को राज्याभिषेक से पहले वनवास का दंश झेलना पड़ा ? क्या भगवान राम को रामराज्य की प्रतिष्ठा करने से पूर्व वन-वन नहीं भटकना पड़ा—इसी महानता के पथ के अनुगामी वो प्रह्लाद भी थे, जिन्हें आग में उतरना पड़ा; ध्रुव भी थे, जिन्हें कंटकाकीर्ण पथ से जाना पड़ा और मीरा भी थीं, जिन्हें जहर का प्याला पीना पड़ा। ये कष्ट-कठिनाइयाँ आत्मपरिष्कार के पथ का और युग-परिवर्तन की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग हैं।

इन बातों को यहाँ लिखने के पीछे का उद्देश्य एक ही है कि मन में इस बात को गहरे से बैठा लिया जाए कि जिस मार्ग पर गायत्री परिजन आगे बढ़ चले हैं, वो पथ अग्निपरीक्षा का पथ है। ऐसे समय में मन कमजोर न करते हुए स्वयं को मजबूत रखने का प्रयत्न हर गायत्री परिजन को अहर्निश करना चाहिए। यह समय हमारी पात्रता की परीक्षा का समय है। ऐसे समय में हममें से प्रत्येक को अपना मन मजबूत रखते हुए पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी के द्वारा रोपे गए, सींचे गए इस गायत्री परिवार के वृक्ष को और ज्यादा मजबूती देने का प्रयत्न करना चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में गुरुसत्ता के चरणों में इससे श्रेष्ठ श्रद्धांजलि और कुछ नहीं हो सकती है। ❑

**युग निर्माण परिवार के हर सदस्य को आरंभ से ही एक घंटा समय और आधा कप चाय की कीमत, ज्ञानयज्ञ के लिए देते रहने की प्रेरणा दी गई है। वह दिशा-निर्धारण युगशिल्पियों के लिए आरंभिक एवं अनिवार्य कर्त्तव्यबोध की तरह था। अब उसमें उदात्त अभिवृद्धि का समय आ गया। समय और धन, दोनों ही अनुदानों का स्तर तथा परिमाण बढ़ना चाहिए।**

***—परमपूज्य गुरुदेव***

खुशी के गीत गाने का, सुअवसर आज आया है।
नया नववर्ष नवयुग का, नया उल्लास लाया है॥

सत्प्रवृत्ति विस्तार से यहाँ,
दैवी शक्ति पधारी है।
जन-जन ने कर्त्तव्य बोध की,
शर्तें सब स्वीकारी हैं।

सृजन का ध्वंस का जग में, बड़ा अभियान आया है।
नया नववर्ष नवयुग का, नया उल्लास लाया है॥

बदलने चाल दुनिया की,
बड़ी बिगड़ी सुधारी है।
मनुज संवेदना की धार,
हर दिल में उतारी है।

जगत् हित के लिए गुरु का, यहाँ आशीष छाया है।
नया नववर्ष नवयुग का, नया उल्लास लाया है॥

देव शक्ति धारण करने का,
मानव अब अधिकारी है।
सद्विचार सद्बुद्धि का पथिक,
कहलाता उपकारी है।

धरा पर स्वर्ग आएगा, गुरु संकल्प भाया है।
नया नववर्ष नवयुग का, नया उल्लास लाया है॥

युग-परिवर्तन की वेला के,
हर क्षण विस्मयकारी हैं।
श्रेष्ठ सुकर्मों से इस जग में,
अमन चैन की बारी है।

समय ने देव संस्कृति का, बिगुल फिर से बजाया है।
नया नववर्ष नवयुग का, नया उल्लास लाया है॥

*—शोभाराम शशांक*

'शांतिकुंज स्वर्ण जयंती व्याख्यानमाला' के अंतर्गत माननीय श्री अमित शाह जी,
गृह एवं सहकारिता मंत्री (भारत सरकार) द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय में उद्बोधन

**अखण्ड ज्योति**
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

**प्र. ति.** 01-12-2021
Regd. N0. Mathura–025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP–08/2021-2023

श्रद्धेय डॉ० प्रणव पण्ड्या जी, कुलाधिपति–देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा
गायत्री धाम, सेंधवा (मध्य प्रदेश) के नवनिर्मित भवन 'सुरभि मंडपम्' का लोकार्पण

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूर भाष–0565-2403940, 2402574 2412272, 2412273 मो बा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org